षोडशग्रंथ.

व्रजभाषान्तरसहित ।

गोस्वामिभूषण

श्री १०८ श्रीगोकुलनाथमहाराजकी

आज्ञानुसार—अनुवादक और प्रकाशक

देवर्षिभट्टश्रीद्वारकानाथात्मज

भट्टरमानाथशर्मा

द्वितीयावृत्ति.

मुद्रालय निर्णयसागर.

सन् १९२३ सं० १९७९.

Published by Pandit Ramanath Shastri, Third
Bhoiwada, Badamandir, Bhuleshwar, Bombay.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge at the
"Nirnaya-sagar" Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

प्रस्तावना.

वाग्देवतावतार श्रीमद्वल्लभाचार्यने वेद गीता और श्रीमद्भागवत आदि भगवच्छास्त्रनके विस्तृतसिद्धान्तनको सक्षेप करकें यह पद्यरूप **'प्रकरण-ग्रन्थ'** वनाये हैं। इनको 'षोडशग्रन्थ' यह नाम कबसू प्रचलित भयो सो अभीतक निश्चय नही होय है। कदाचित् इनके प्रतिपाद्यविषय हर-एक वैष्णवकू प्रतिदिन याद राखवे लायक हैं और वे सोलह मुख्य हे यों समझके राख्यो होय ऐसो अनुमान मात्र होय है. अस्तु तथापि ये ग्रन्थ अमूल्यरत्न हैं यामे तो कोई तरहको सन्देह नही है।

या ग्रथ पै अनेक आचार्यनने कितनीक संस्कृतमे टीकाऐ लिखीं हैं. जिनके देखवेसू प्रायः बहोतसो सप्रदायको रहस्य मालुम होय जाय है. भाषामेभी याकी कितनीही टीका होय चुकी हैं परन्तु तिनमे कितनीक टीका व्रजभाषाकी च्युतिसू नही जैसी होय रही है. यद्यपि उनमे विस्तार है तथापि भाषामे विपर्यास होय जायवेसू मूलकोभी पतो नहीं लगे है. या व्रजभाषान्तरमे प्रायः यह बहोत ध्यान राखो हे के मूलको अर्थ सरल रीत्या समझमे आयसके अन्वयमे प्रायः अपेक्षित पद धरदीने हैं. और समासभी जहातहाके विशदपदनको करदीनो है. तासू विशेषसर-लता होयवेकी सभावना है श्रीमद्वल्लभाचार्यनकी वाणी अनुग्रहैकगम्य है यह ग्रन्थनके देखवेसू मालुम पडै है किन्तु सस्कृतटीकानकेद्वारा जो कछु आशय समझमे आयजाय वहभी केवल उनको अनुग्रह है यासूही या भाषान्तरमे भी मनुष्यसुलभ प्रमादसूं क्वचित् स्खलित रह गये होंय तो सत्पुरुषनकू चहिये के सुधारके काम चलावे. या जगत्मे सर्वपरितोष होनो कठिन है सो युक्तभी है क्योंके—

गच्छतः स्खलनं क्वाऽपि भवेदेव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

अनुवादकर्ता.

॥ श्रीहरिः ॥

द्वितीय संस्करणकी भूमिका और

षोडशग्रंथनको आशय !!

श्रीमद्वल्लभाचार्यके सब सिद्धान्त वेदादि समग्र भगवच्छास्त्रनके गूढ आशय हैं। किन्तु वे बडे गम्भीर और विस्तारवारे है। तथा भाष्य सुबोधिनी आदि ग्रन्थनमे छिपे पडे है तासूं उनकू निकासवेमे साधारण बुद्धिवारेनकू अतिकष्ट पडे यासू श्री आचार्यनने कृपाकरके उन गूट सिद्धान्तनकू सोलह ग्रथनद्वारा प्रकट कर दिये है। विषयके अतिगम्भीर होयवेसू तथा बहूतसे विषयकू थोडे अक्षरनमे ले आयवेसू भाषा कठिन हो गई है। वास्तवमे श्रीमद्वल्लभाचार्यकी वाणी अतिसरल है किन्तु इन दोकारणनसूंही कहु कहुं कठिन होय जाय है। तासूंही तद्वंशज श्रीपुरुषोत्तमजी प्रभृति आचार्यनने अनेक टीकाएं करी हैं। और गम्भीराशयवाणी होयवेसूही टीकाकारनके आशय कहु कहु एक दूसरेसू जुदे पड गये है। तथापि वे सब अर्थ आचार्य वाणीमेसू निकसे है।

यमुनाष्टकको आशय।

यमुनाष्टकमे श्रीयमुनाजीके स्वरूप और माहात्म्यको वर्णन है। श्रीयमुनाजी व्रजजननके चतुर्थयूथकी स्वामिनी है। प्रभुको जो स्वरूप और उनमे जो गुण है वेही श्रीयमुनाजीमे है। प्रभुकी परमप्रिया है। तासू यमुनाष्टकके पाठकरवेसू शरीरकी शुद्धि सेवाको अधिकार, नवीन दिव्यदेहकी प्राप्ति तथा प्रभुस्नेहकी प्राप्ति होयहै।

बालबोधको तात्पर्य।

या जगत्मे अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सबही मनुष्यनने अलग अलग पुरुषार्थ समझ राखे है। कोई पैसाकूही पुरुषार्थ मानें हैं। कोई धर्मकूही

पुरुषार्थ माने हैं। कोई कीर्ति फलवेकूही पुरुषार्थ मानै बैठे है । किन्तु श्रीवल्लभाचार्यके सिद्धान्तमे चारो पुरुषार्थ (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) मान्य है। मुख्य दो—काम और मोक्ष पुरुषार्थ है। सुखकोही नाम काम है। और दु:खके अभावकूही मोक्ष कहे है। सुखको साधन अलौकिक कर्म है–धर्म है। और धर्मको साधन अर्थ है तासू ये दोनोभी पुरुषार्थ है। जीवकूं जाकी चाहना होय वाकू पुरुषार्थ कहे है। पुरुष समय समय पै धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोनकू चाहे है तासू ये चारो पुरुषार्थ है। जगत्मे ब्रह्मा विष्णु और शिव ये तीन फलप्रद देवता है। किन्तु ब्रह्मा सृष्टिकार्यमे लगे रहे है तासूं शिव और विष्णु ये दोनो पुरुषार्थ देवेवारे है। विष्णु मोक्ष दे है। शिवजी भोगको दान करें है।

मोक्षशास्त्रभी चार प्रकारके हैं। दो शास्त्र (साख्ययोग) अपने किये साधनसूंही पुरुषार्थ देवेवारे है । और दो (वैष्णव शैव) शास्त्र दूसरेके आश्रय लेवेसू पुरुषार्थ देवेवारे है।

ये सब रहतेभी भगवदीयनकूं तो परब्रह्म श्रीकृष्णही सेव्य और आश्रय लेवे लायक हैं।

सिद्धान्तमुक्तावलिको आशय ।

नवधा भक्ति करनो यह जीवको मुख्य धर्म है। वह नवधा भक्ति पुष्टिमार्गीयतनुजा सेवामे आयजाय है। सो तनुजा सेवा वित्तजासहित करनी ऐसो सिद्धान्त है। अपने वित्तके अनुसार धनको प्रभुके अर्पण करनो यह वित्तजा सेवा है। अपने शरीरसूं मन्दिर मार्जनसूं लेके शयनपर्यन्त सब सेवा करनी तनुजा सेवा है। श्रद्धापूर्वक सब पदार्थनमे प्रभुकी तथा प्रभुसबंधी भावना करके जो नित्य तनुजा वित्तजा सेवा करे तो प्रभुमे प्रेम होयके चित्तकी तन्मयता प्राप्त होय। यह सेवा मुख्य और फलात्मिका है।

यदि ऐसो न बन सके तो सब जगत्कूं अपने आत्माकू अक्षर ब्रह्मात्मक प्रभुको लीलास्थान मानतो प्रभु प्रेमके लिये तनुजा वित्तजा सेवा करे। वाकू चिरकालमे अहंताममतानाश तथा सर्व पदार्थ अक्षर धाम है ऐसोज्ञान होय हैं। तीसरी कक्षा ये है जो शरीर पुत्र धन आत्मा प्रभृतिमें अभिमान

होय वह जो प्रभुसेवा करे तो सेवाके उपयोगी पदार्थ न मिलवेसूं दु ख पावे क्लेश सहन करतोभी, प्रतिबधनकूं दूर करवेकी इच्छासू श्रीभागवतश्रवण-वाचनद्वारा लीलाविशिष्ट प्रभुको चिन्तन करतो जो सेवामे लगो रहे तो वाकी संसारासक्ति दूर हो जाय है। और सिद्धि प्राप्त होय है।

जाकूं प्रारब्धवश प्रभुकी सेवा करतीसमय लौकिकासक्तिद्वारा विघ्न होंय वह क्लेश भोगकेभी सेवाको त्याग न करे। फलविलम्ब निवृत्ति तथा प्रतिबन्धनिवृत्ति होयवेके लिये श्रीमद्भागवतको आराधन करतो जहा प्रभु प्रेरणा करे वहा रहके प्रभुकी पूजा सेवा उत्सव मडानप्रभृति उत्साहके भगवत्कार्य करतो रहे। और ऐसेको वैदिकमर्यादामे विशेष अभिनिवेश रहतो होय तो गंगातीरपै रहके श्रीभागवतको पारायण करतो रहै। प्रभु मोकू ज्ञानमार्गमें राखनो चाहे है एसे सन्तोष राखे।

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदको तात्पर्य।

पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा, इन भेदनसूं तीन मार्ग जुदे जुदे है। प्रभुके अनुग्रहकू पुष्टि कहे है। वेदमार्गकू मर्यादामार्ग कहें है। और दुनियाके देखा-देखी चलवेकी जामे प्रवृत्ति होय वो प्रवाहमार्ग है।

प्रभुने अपने भक्तनकूं सरल भक्तिमार्गको उपदेश कियो है तासूं मालुम पडे है के अनुग्रहमार्ग जुदो है। वेदमे साधननके नियम करे हैं तासू वेदमार्ग जुदो है। और गीतामे तथा वेदमे 'पेदा होनो मरनो' कह्यो है तासू प्रवाहमार्ग जुदोही है। पुष्टि और मर्यादामार्गको अन्त है क्योंकि उन मार्गमे प्रभुमे किवा अक्षरमे सायुज्य मिले है। किन्तु प्रवाहमार्गको अन्त नहीं है। ये तो जहा-तक सृष्टि रहैगी वहातक चलतोही रहैगो। पुष्टिमार्गमे मुख्य साधन प्रभुको अनुग्रह है मर्यादामे वेदोक्तसाधन साधन हैं। और प्रवाहमे काम्यकर्म, तथा असत्कर्मसाधन हैं, पुष्टिमार्गमे प्रभुस्वरूपही फल है। मर्यादामे मोक्ष फल है। और प्रवाहमे भ्रमणही फल है।

पुष्टिमार्गीय जीवमें और प्रभुमे यद्यपि स्वरूपचिन्ह और गुणआदिसूं भेद नही है तोभी अभेदमें लीला नही होय सके है तासू लीला होय सके इतनो फरक तो प्रभु राखेही हैं। और लीलाअवस्थामे स्वगत भेदतो राखनोही पडे

है । वाटीसूं आचर्यनने प्रभुमे और जीवमे तादात्म्यसबंध राख्यो है । अभेद जो भेदकू सहन करतो होय तो वो सबध तादात्म्य कहो जाय है ।

पुष्टिमार्गीय जीव दो प्रकारके है, शुद्धपुष्टिमार्गीय और मिश्रपुष्टिमार्गीय । शुद्धपुष्टिमार्गीय जीव अतिदुर्लभ है । मिश्रपुष्टिमार्गीय अनेक प्रकारके हैं । सूक्ष्ममे तीन प्रकार और विस्तारमे ९ तथा ८१ होयके अनत भेद होय जाय हैं ।

पुष्टिमार्गीयजीवनको लीलासहित प्रभुही फल है । प्रभु अनन्तस्वरूप हैं तासूं पुष्टिमार्गीयजीवनकू इनके स्नेहतारतम्यसूं स्वरूपतारतम्यद्वारा प्रभुभी प्रकट होयके फलदान करे है । श्रीकृष्ण, राम, नृसिह और मर्यादामार्गीय-जीवभी ज्ञानी, भक्त, ज्ञानिभक्त आदिभेदनसू अनेक प्रकारके हैं । इनके साध-नभी वहुत है । इनकू फल अक्षरसायुज्य (ब्रह्ममे ब्रह्म होयके मिलजानो) अथवा पुरुषोत्तमसायुज्य होय है ।

पुष्टिमार्गीय उत्तम जीव, किवा ज्ञानमार्गीय उत्तम जीवनकूभी लोकरक्षार्थ वेदशास्त्रोक्त कर्म अवश्य करने पडे हैं । तथा पुष्टिमार्गीयजीवनमे जो कहूं मर्यादाके धर्मनको आचरणआदि सुनवेमे आवे यह सब लोक रक्षार्थ समझनो एसेही कर्मादिभी समझनो । और जो सब मार्गनसू थोडोथोडो सबध राखवे-वारे तथा पंच देवपूजकप्रभृति जीव, ये सब चर्षणीशब्द (भ्रान्त)सूं पुकारवे लायक है । इन्हे खडश फल मिले है किन्तु ये सब प्रवाही जीव जैसेही है ।

काम्यकर्म करवेवारे जीवभी प्रवाहीजीव जैसेही है । क्योकि इन दोनो-नको जन्ममरणादिचक्र पूरो नही होय है । दोनोतरहके ये जीव प्रवाहके भेदही जाननो मुख्य प्रवाही जीवभी अनन्त है ।

'प्रवृत्ति च निवृत्ति च जना न विदुरासुरा' । या श्लोकसूं प्रभुने गीताजीमे इन आसुर जीवनको वर्णन कियो है ।

आसुर जीवनकेभी अनेक भेद है । उनमे मुख्यभेद दो है । अज्ञ आसुर और दुर्ज्ञ आसुर । भगवानने जिनको गीतामे वर्णन कीयो है वे दुर्ज्ञ आसुर है क्योंकि इनको ज्ञान स्वरूपत. दोषवारो है । और जीव जो इनके सगसूं आसुर होगए है वे अज्ञ आसुर है ।

अज्ञ आसुर कभी २ भगवदिच्छासूंबी आसुरकुलमे उत्पन्न होय है। वे वास्तवमे आसुर नहीं है। वास्तवमे वे भक्त अथवा ज्ञानी होय है किन्तु प्रभुकी क्रीडेच्छासूं वे वहा उत्पन्न होय है। एसे जीवनकू भगवदीयनके सगसूं किवा प्रभुके स्वरूप किवा स्मरणके द्वारा मोक्ष मिले है।

सिद्धान्तरहस्यको तात्पर्य।

श्रीमद्वल्लभाचार्यके सिद्धान्तनमे 'सिद्धान्तरहस्य' ग्रथ अपूर्व है। यद्यपि या ग्रथकी वात सम्पूर्ण भक्तिशास्त्रनमे अच्छीतरह कही है किन्तु कोई आचार्यनने याकूं ऐसी तरह पृथक् करके ग्रथरूपमे कही नहीं है। केवल श्रीमद्वल्लभाचार्यश्री-नेही ये बात प्रकट करी है। शास्त्रमे यह वात छिपी पडी है तासूंही याकूं रहस्य ये नाम दियो है। भक्तनके लिये यह बात अवश्य जानवेलायक है, अतिउत्तम है, यदि ये रहस्य प्रकट न होतो तो भक्तिमार्गही व्यर्थ होय जातो तासूही 'सिद्धान्तरहस्य' ये नाम कह्यो है। अनधिकारीनके हृदयमे ये सिद्धान्त जमे नहीं है तासूमी 'रहस्य' शब्द याके सग लगायो है।

सहज आदि पाच दोष लिगशरीर और तत्सबद्ध होयवेसूं जीवके सग लगे है। तामेभी सहज दोष भारी है। याने जीवके स्वभावकू कछुको कछु कर-दीनो है। सेवामे अथवा भक्तिमे स्वभावको काम प्रतिपल पडे है। या स्वभा-वकू सुधारे बिना और सहज दोषकू निवृत्त किये बिना सेवामार्ग तथा भक्ति-मार्ग व्यर्थ सो हो जाय है। थोडोभी विचार करवेसूं ये बात स्पष्ट समझवेमें आजायगी।

देहमे आत्मभाव करलेनो ये अहता है। अपने आपकूं स्वतत्र मान लेनो ये भी अहंता है। मे करवेवारो हू ऐसें मान बैठनो येभी अहता है। यह दोष आयवेसूं ममतादोषभी जीवमे आय जाय है। देहसू सबध राखवेवारे स्त्रीपुत्र गृह आदिपदार्थ सब प्रभुके है भगवदीय है। किंतु देहमे अहभाव होयवेसूं जीव भवदीय पदार्थनकूं अपने समझवे लगे है। याकोही नाम मम-ताहै ये दो दोष प्रधान है, और सहज है। ये दोष अनादि है, और जीव-पनेके सगही आये है तासूंही इनकूं सहज कहे है।

इन सहज आदि दोषनकूं दूर करवेको एकही उपाय निवेदन तथा सम-र्पण है। यद्यपि इन दोषनकी सर्वथा निवृत्ति क्रमिक अभ्याससूं होयगी तथापि

जादिनसूं इन दोषनकी निवृत्तिके उपायको गुरुके द्वारा प्रारम्भ कियो वा आरम्भकोही नाम है ब्रह्मसबध ।

ब्रह्मसंबधको जो मंत्र है वामे यह बात समझाई है के सपरिकर जीव ब्रह्मको है (प्रभुको है) श्रीकृष्ण जीवके उपजीव्य, स्वामी, अशी, अतएव सेव्य और सर्वस्व है, और जीव श्रीकृष्णको उपजीवक, दास, अश अतएव सेवक है । क्रीडापरिकर या जगत्मे प्रभूने जीवकू सेवार्थही बनायो है । प्रभु और आपमे जो ये स्वामिसेवकसबध है याकू जीव, अहंता ममता दोष आयवेसू भूलगयो है । या ब्रह्मके और जीवके सबधकू याद दिवायवेवारे मंत्रकूं ब्रह्मसबध मत्र कहे है । प्रतिदिन प्रतिपल या सबधकू स्मरण करते रहनो । ये स्मरण जब दृढ होय जाय तब वे दोष सर्वथा निवृत्त होय जाय हैं । जिनकू याके दानकरवेको काम पडे है वे याको जपभी करे है किन्तु वैष्णवनकूतो याके अर्थको स्मरण करते रहनो चहिये ।

इन सब बातनकूं दृष्टान्त और युक्तिनके द्वारा या सिद्धान्तरहस्य ग्रथमें समझाई है । सिद्धान्तरहस्य ग्रथको विवेचन कियो जाय तो षोडशग्रथके बराबरको विस्तार होय जाय तासूं ये बात लेखमे नहीं व्याख्यानद्वारा सुनवेकी हैं । आगे या ग्रथकूं कहा सोलह ग्रंथनकू ही सस्कृतके सिवाय भाषामे लोकोपकारक रीतिसू कोई विद्वानने समझाए नहीं ऐसो मालुम पडे है अन्यथा ब्रह्मसबधके सिद्धान्तको लोग स्वय वैष्णववर्गमे होयकेभी दुरुपयोग न करते । आचार्यनकी वाणी ब्रह्मसूत्रनकी तरह सक्षिप्त और गम्भीर है ।

अच्छीतरह विस्तारसूं समझाये बिना समझमे नहीं आवे है ।

नवरत्नको तात्पर्य ।

या ग्रथमे नो श्लोक रत्नकी तरह हैं तासूं याको नाम नवरत्न है ।

जीवस्वभाव ऐसो है जो अनेक समय अनेक तरहकी चिन्ता होय हैं । 'मेरी लौकिकी गति न होय जाय' ऐसे जो चिन्ता होती होय तो वा समयमे यह विचार करनो । जो मेरे प्रभुको स्वभाव अनुग्रह करवेकोही है वे अपने धर्मको परित्याग कभी नहीं करेंगे ।

यदि योगक्षेमके विषयमे चिन्ता होती होय तो वा समयमें यो विचार करनो कि मैने सपरिकर अपने आपको प्रभुकूं निवेदन कियो है और प्रभु सब जगत्के मालिक हैं सबके अन्तर्यामी हैं सब जाने हैं अपनी इच्छासू सब करेंगे यामे मेरे चिन्ता करवेसू कछु प्रयोजन नही है ।

एसें अन्यविनियोगमे, आत्मनिवेदनके स्वरूपाज्ञानमे, निवेदनस्वीकारमे, प्रभ्वर्थं अन्यविनियोगमे, लौकिकासक्ति वैदिकासक्ति करायवेमे, सेवारीति भोगरागप्रभृतिमे, दु खादिके समयमे यदि चिन्ताए होती होय तो विचारके द्वारा उन चिन्तान्के दूर करवेके उपाय या नवरत्नग्रथमे बताये हैं ।

अन्तःकरणप्रबोधको तात्पर्य ।

या ग्रथमे विशेष करके अपने अन्त करणकू समझायवेकी वाते कही है । वैष्णवनकूभी यामे ग्रहण करवेको ये है के कोईसमय असावधानतासू यदि प्रभुको अपराध बन जाय तो अतिशय दैन्यपूर्वक क्षमा करा लेनो और अपने अंत करणकू ऐसे समझा लेनो ।

विवेकधैर्याश्रयको तात्पर्य ।

या ग्रथमे विवेक धैर्य और आश्रयको निरूपण है । विवेकसूं कामनावेशके समय दृढता बनी रहे है । और धैर्यसू दु खके समय दृढता बनी रहे है । इन दोनो तरहकी दृढतासू प्रभुको आश्रय सिद्ध होय है ।

विवेक—मनुष्यकू कोई न कोई कामना अवश्य रहे है । मनुष्य कामनामय है । कोईतरहकी कामना हृदयमे उत्पन्न होय और वो यदि पूर्ण न होय तो प्रभुकी भक्ति शिथिल होय जाय है । ऐसे समय विवेकसू काम लेनो । 'प्रभु सर्व समर्थ हैं, कोई वातकी प्रभुके यहा कमी नहीं है फिरभी जो प्रभु मेरी इच्छा पूरी नही करे है यामे अवश्य कोई कारण है । प्रभु मेरो हितही करें हैं । मेरी इच्छापूर्ति न करवेमेभी प्रभुने कोई मेरो हितही विचार्यो है । जब प्रभुकी मेरी इच्छापूर्ति करवेकी स्वयइच्छा होयगी तब अपने आप करेगे' ऐसें विवेकद्वारा दृढता बनी राखनी । अभिमान कभी न करनो आग्रह नही राखनो । आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक दु खनकूं दृढतापूर्वक सहन करनो प्रभुके ऊपर कभी अविश्वास नहीं करनो । प्रभुकूं अथवा कोई अन्य

देवसूं कोई कार्यमे प्रार्थना न करनी चाहिये । लौकिक अलौकिक सब कार्यनमें एक प्रभुकूंही रक्षक और आश्रय समझने । अन्यको आश्रय न करनो ।

कृष्णाश्रयको तात्पर्य ।

या कृष्णाश्रयमे जीवको एक प्रभु श्रीकृष्णही रक्षक है यह प्रतिपादन कर्यो है । लोक, देश, गगादितीर्थ, सज्जनलोग, मत्रआदिशास्त्र, व्रतादिकर्म, सब कलिके दोपसू दुष्ट होगये है । तासू ऐसे समय श्रीकृष्णही रक्षा करवे-वारे है । श्रीकृष्णके सिवाय श्रेष्ठ कोई देव नही है और जीव अतिदीन हीन है तासू प्रभुही रक्षक है ।

चतुःश्लोकीको तात्पर्य ।

या ग्रन्थमे चार श्लोकनसूं पुष्टिमार्गीय चार पुरुपार्थनको वर्णन है । भक्ति-मार्गमे प्रभुसेवा धर्म है । श्रीकृष्णही धन है । प्रभुके मुखारविन्दको दर्शनही काम है । और प्रभुके वास्तव दासनमे गणना होय बस येही मोक्ष है । ये बाते चार श्लोकनमे सक्षेपसू कहीं है ।

भक्तिवर्धिनीको तात्पर्य ।

सब दैवीजीवनके हृदयमे प्रभुस्नेहको बीज होय है । जो कालकर्मवस्तुके विघ्नसू नष्ट नहीं होय है । तिरोहित सो तो हो जाय है । वाको पुन प्रकटन करवेके लिये और प्रकट होय तो दृढ करवेके लिये तथा बटायवेके लिये या भक्तिवर्द्धिनीग्रथमे उपाय बतायो है ।

गृहमे रहके यदि अविकारी होय तो अपने अपने वर्ण और आश्रमके धर्म-नकूं सेवाके अनवसरमे अवश्य करतो रहै और मुख्यरीतिसू प्रभुकी तनुजा वित्तजा (नवधा भक्ति) करै । या रीतिसू यदि सेवाश्रवणादि करतो रहै तो कितनेही कालमे बीज दृढ होयके प्रेम, आसक्ति और व्यसन ये फलप्राप्ति होय हे ।

प्रभुमे प्रेम होयवेसूं जगद्वर्ती पदार्थनमेसू स्नेह आपने आप जातो रहे है । आसक्ति होयवेसू गृह और गृहवर्ति भगवद्विमुख जननमे अरुचि होय जाय है ।

और व्यसन होयवेसू मनुष्य कृतकृत्य होय जाय है। प्रेमकी ऐसी उच्चकोटिकू जब पहुच जाय तो वा समय सन्यास ले ले। अर्थात् गृहको त्याग करके कहूं प्रभुके सेवा धाममे जहा भगवदीय भगवत्पर वैष्णव रहते होय उनके संग रहै। उनके पास मदिरादिमे रहवेसू यदि कोई तरहभी चित्तमें विकार आयवेको सभव होय तो न दूर न पास ऐसे स्थानमे रहै। विशेषकरके तो श्रीमद्भागवतश्रवणवाचन और प्रभुसेवामे दृढ आसक्ति होय तो जीवनपर्यन्त वाकूं डर नही है। वाको नाश नही होय सके है।

जलभेदको तात्पर्य।

प्राय बहुतसे लोग भगवान्के गुणानुवाद करे है। गुण गावे हैं किन्तु उनके फलमे भेद होय है कितनेही गुणगातानकू बुरो फल मिले है तो कितनेनकू अच्छोभी फल मिले है यामे कहा कारण है ऐसी आशकाकू दूर करवेके लिये ही यह जलभेदग्रथ श्रीआचार्यचरणनने बनायो है।

वर्णनकर्ता और गुणगानकर्तानके अन्त करण भेदसू भगवद्गुणनमे भी भेद हो जाय है। तैत्तिरीयसहितामे 'कूप्याभ्य स्वाहा' आदि मत्र हैं उनमे आधारके कारण जलके अनेक भेद बताये है उन जलके भेदनके अनुसारही गुणगान कर्तानके अनुसार गुणनकेभी भेद हो जाय है।

गवैया, वेश्यागामीगवैया शुद्धपौराणिक, स्त्रीआदिमें आसक्त पौराणिक, भगवच्छास्त्रके पडित होयके दुसरेनके सदेहकू दूरकरवेवारे, प्रेमयुक्त पडित, जिनमें पाण्डित्यसू प्रेमविशेष होय वे, थोडो थोडो प्रेम और शास्त्र होय किन्तु आचरण तथा कर्मकरवेसू शुद्ध होय वे, योग तथा भगवद्ध्यान करते होय ऐसे जो विद्वान् गुणवक्ता, तप एव ज्ञानसहित वक्ता, इत्यादि अनेक प्रकारके प्रभुके गुणगान करवेवारे है। उनमे गुणातीत भगवद्गुणनकू अतिप्रेमयुक्त होके सब गुणनकू समानरीतिसू गाते होय और समझते होय वे उत्तम हैं। एसेनके मुखसूं प्रभुके गुण सुननो अतिदुर्लभ है। प्रभुकी पूर्ण कृपा होय तोही ऐसे गुणगानकर्ता मिलें है। ऐसेनके मुखसूं एक शब्दमात्रभी यदि कानमे भगवद्गुण गिरजाय तो उद्धार होय जाय।

पंचपद्यको तात्पर्य ।

या ग्रंथमे भगवत्कथाके तथा गुणनके श्रोतानको वर्णन है । प्रभुके गुण सुनवेवारे अनेक प्रकारके है । उनमे जिनकी प्रभुमे दृढ आसक्ति है जो लौकिक वैदिक कर्म तथा फलमे आसक्ति नहीं राखे है वे उत्तम श्रोता हैं ।

संन्यासनिर्णयको आशय ।

या ग्रथमे सन्यासको निर्णय कियो है । परित्याग शब्दसू सन्यास अथवा त्याग लेनो । कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, और भक्तिमार्ग, ऐसे तीन मार्ग वेदशास्त्र-नमे जीवके उद्धारके लिये कहे है । कर्ममार्गमे सन्यास बनही नही सके है । अच्छीतरह अर्थात् एकदम सबको छोड देनो यह सन्यासको अर्थ है । सो जहातक देह है वहातक बन सके नही । और कलियुगमे कर्मत्याग करवेसूं अतिदुर्दशा होय है । अब भक्ति और ज्ञानमार्ग रहे । तहा भक्तिसाधनकी सिद्धिके लिये अथवा साधनरूपसू सन्यास न लेनो । क्योकि श्रवणादि नवधा-भक्ति बिना गृहस्थाश्रमके अथवा सत्सग बिना बन नहीं सके है । और भक्तिमे भक्तिके साधन अवश्य करने चहियें ऐसी अवस्थामे परित्याग बन नहीं सके है । यदि गृहस्थित मनुष्य सेवा आदिमे बाध करते होंय यो समझकें यदि सन्यास लियो जाय तो भी ठीक नहीं क्योके सन्यास लिये पीछे भी कलिकालके मनुष्यनसूं ही काम पडेगो । कालको प्रभावही ऐसो है के विषयमे मनकूं खेचके ले जाय है । तासू साधनरूपसूं अथवा साधनसिद्धिके लिये भक्तिमार्गमे सन्यास लेनो ठीक नहीं है । किन्तु फलात्मक सन्यास लेनो भक्तिमार्गमें सुख दे है । भक्तिमार्गमे प्रभुको स्नेहपरिपूर्ण प्राप्त होनो फल है । वह स्नेह दो दलवारो है । एक सयोग और दूसरो विरह । प्रभुके स्नेहभये पै उत्तरदलात्मक विरहको अनुभवकरवेके लिये यदि सन्यास लियो जाय तो ठीक है । ऐसे सन्यास लेवमे कछु वेश बदलवेकी अथवा दंडकमण्डलु-ग्रहणकीभी यद्यपि अपेक्षा नहीं है तथापि अपने सगे सबधी स्त्रीपुत्रादिकें स्नेहानुबंधकी निवृत्तिके लिये लेलिये जाय तो डर नहीं ।

विरहाग्निके बराबर तन्मय बनायवेवारो और दूसरो कछु नही है । काष्ठमें अग्नि रहतेभी जबतक वह बाहर प्रकट होयके काष्ठमें प्रवेश न करै वहातक

वो काष्ठकूं अग्निरूप आत्मरूप नही कर सके है, ऐसेंही आनन्दरूप प्रभु यद्यपि सर्वत्र हृदयमें विद्यमान है तथापि जहातक बहार प्रकट होयके प्रवेश न करैं वहातक जीवकू आत्मरुप आनन्दरूप नहीं कर सकै और वहातक जीवके सकलबंधंभी नष्ट नही होय है तबही सब बन्धनको नाश होय है। विरहमें प्रतिपल भावनाद्वारा प्रभु बहि प्रकट होयके अन्त प्रवेश करते रहे है। और थोडेही कालमे जीव आनन्दमय होय जाय है और वाके सब वंध या तरहसूं नष्ट हो जाय हैं। ऐसे विरहको अनुभव सर्वपरित्यागविना होय नहीं है। यामे दृष्टान्त कौण्डिन्य ऋषि और गोपीजन है सो सबकू विदितही है।

सर्वपरित्यागमे श्रवणादिको परित्यागभी आय जाय है। क्यों कि गुणवर्णनश्रवणादि विरहाग्निके शीतल करवेवारे है, प्रकृतिकू स्वस्थ बनायवेवारे है। तासू सर्व परित्याग कह्यो है। याहीको नाम फलात्मक सन्यास हैं। और ये सन्यासही भक्तिमार्गमे करनो उचित है साधनसन्यास नहीं।

ज्ञानमार्गमे सन्यास लेनो उचित नहीं। क्योंके ज्ञान साधननकी अपेक्षा राखे है। भगवदर्पित यज्ञादि किंवा श्रवणादिके द्वारा ज्ञान होय है वे सर्वपरित्याग करवेसू बन नहीं सके है। और कलियुगभी सब तरहसू सन्यासमे बाधक है। तासू कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्गमे सन्यास लेनो निषिद्ध है। केवल भक्तिमार्गमे फलात्मक सन्यास है। सो विधिवश नहि है जाके ऊपर प्रभु कृपा करदे वाकू अपने आप होय है। साधनकी यहा गति नहीं है।

सेवाफलको तात्पर्य।

मानसी सेवाके परिपाकमे अन्तमे तीन फल मिले हैं। सेवा एक है और फल तीन है तासू मालुम पडे है के सेवामेभी प्रकारभेद अथवा साधनभेद अवश्य है। जो जा तरहकी सेवा करै वाकू वा तरहको फल मिलै है। ये यादृशी शब्दको तात्पर्य मालुम पडे है।

यदि सर्वोत्तम सेवा बने तो अलौकिक सामर्थ्यप्रभुके साथ गौणमुख्य कामाशनादि फल मिले है और मध्यम प्रकारकी सेवाको फल सायुज्य है। सायुज्यशब्दके दो अर्थ होय है। प्रभुमे ऐक्यको होनो, और प्रभुके सग गोपपार्षदकी तरह सहयोग। सो दोनो ही लेनो। और जो तीसरे प्रकारकी सेवा

करै वाकू तृतीय अधिकारफल मिले है। सेवोपयोगी अक्षरात्मक देहकूं अधिकार कहें हैं।

सेवासमयके चित्तकी घबराहट अथवा और आकस्मिक विघ्न होतेही रहे किवा लौकिकभोग आदिमे आसक्ति रहतीं होय तो ये सब विघ्न फल नही होयवे दें हैं। यदि ये सब तरहके अल्प विघ्न उपाय करवेकू भी दूर न होते होय तो समझलेनो कि प्रभुही हमे फल देनो नहीं चाहे है। ऐसी अवस्थामे श्रीमद्भागवतादिको आश्रय लेके ज्ञानमार्गमेही निश्चिन्त रहनो। प्रभु जा तरहसूं राखे सेवककू वा तरहसूं रहनो ये धर्म है। और यदि लौकिक बातनमें, लौकिकपदार्थनके भोगमे, जबरदस्ती मन रहतोही होय अथवा अन्य अचूकते बलवान् विघ्न आतेही रहे तोभी समझलेनो कि प्रभु मोकूं ससारमेही राखनो चाहे है। क्योके गीतामे प्रभुने प्रतिज्ञा करी है के 'असुरनकू मे सदा ससारमेही राखू हूं'।

रमानाथ शास्त्री.

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषाटीकासहित

श्रीवल्लभाष्टक ।

श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितरसिकानंदसन्दोहरूप-
स्फूर्जद्रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्तसर्वोऽपि शश्वत् ।
तस्यैवात्मानुभावप्रकटनहृदयस्याज्ञया प्रादुरासी-
द्भूमौ यः सन्मनुष्याकृतिरतिकरुणस्तं प्रपद्ये हुताशम् । १ ।

भावार्थ—हमेशां, श्रीवृन्दावनेन्दु (हरि) ने प्रकट कियो जो रसिकनको आनंद समूहरूप, सुन्दररासकों आदिलेके जो लीला, सोई एक अमृतसिन्धु ताके प्रवाहसूं आप्लावित करदिये हे सर्वजन जाने, ऐसे, जो श्रीमद्वल्लभाचार्य, और अपने प्रभावके प्रगट करवेकी है इच्छा जाकी, ऐसे उन्ही श्रीमद्वृन्दावनेन्दुकी आज्ञासूं भूतलपै अतिकरुणा करकें मनुष्याकृतिकों धारण करते प्रकटभये. उन अग्निस्वरूप श्रीवल्लभाचार्यके, मैं शरण जाऊं हूं ।

कठिन समास—श्रीमच्च तद्वृन्दावनं च तस्य इन्दु, तेन प्रकटितो यो रसिकानदसदोहरूपः स्फूर्जद्रासादिलीलाऽमृतजलधिभर॰, तेन आक्रान्त. सर्व. येन स । आत्मन अनुभाव आत्मानुभाव, तस्य प्रकटने हृदयं यस्य, तस्य । १ ।

नाऽऽविर्भूयाद्भवांश्चेदधिधरणितलं भूतनाथोदिताऽस-
न्मार्गध्वान्तान्धतुल्या निगमपथगतौ दैवसर्गेऽपि जाताः ।

घोषाधीशं तदेमे कथमपि मनुजाः प्राप्नुयुर्नैव दैवी-
सृष्टिर्व्यर्था च भूयान्निजफलरहिता देवं वैश्वानरैषां । २ ।

पदनके ऊपर लिखे अंकनके अनुसार अन्वय लगा लेनो ।

भावार्थ—हे देव, हे अग्निस्वरूप ! जो आप या भूतलपै प्रकट न होते, तो वेदोक्तमार्गकी सरणीमे दैवसर्गमेभी पैदाभये, किन्तु महादेवके कहे असन्मार्गके अन्धकारमें अन्धेकी तरह भये, ये जीव, श्रीनंदनंदन श्रीकृष्णकूं कोईतरहसूंभी नहीं प्राप्त होय सकते हे, और अपने श्रीहरिरूपफलसू रहितभई यह दैवी सृष्टिभी व्यर्थ होय जाती ।

कठिनांशको समास—धरण्यास्तल, धरणितले इति अधिधरणितलम् । भूतनाथेन उदिता भूतनाथोदिता, असन्तश्च ते मार्गाश्च असन्मार्गा भूतनाथोदिताश्च ते असन्मार्गाश्च, भूतनाथोदिताऽसन्मार्गाणा ध्वान्तं, भूतनाथोदिताऽसन्मार्गध्वान्तेन अधतुल्याः ते । २ ।

नह्यन्यो वागधीशाच्छ्रुतिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे
यस्मात्साध्वी स्वभावं प्रकटयति वधूरग्रतः पत्युरेवं ।
तस्माच्छ्रीवल्लभाख्य त्वदुदितवचनादन्यथा रूपयंति
भ्रान्ता ये ते निसर्गत्रिदशरिपुतया केवलान्धंतमोगाः । ३ ।

भावार्थ—वाणीके पतिके सिवाय दूसरो कोईभी श्रुतिगणनके वचनके भावकूं जानवेके लिये समर्थ नहीं है, कारणके पतिव्रता स्त्री अपने पतिके आगेही अपने आशयकूं प्रकट करे है, तासूं हे श्रीवल्लभाचार्य ! जो लोक आपके कहे वचननसूं अन्यथा वेदनको अर्थ कहे हैं, वे स्वभावसूंहीं आसुरप्रकृति होयवेसूं भ्रान्त होते केवल अन्धतमकूं प्राप्त होय हैं ।

क० समा०—निसर्गेण त्रिदशरिपु निसर्गत्रिदशरिपुः तस्य भाव. तत्ता, तया। केवलं च तदन्धं तमश्च केवलान्धतम, केवलान्धतमसि गच्छन्ति ते ।३।

प्रादुर्भूतेन भूमौ व्रजपतिचरणांभोजसेवाख्यवर्त्म
प्राकट्यं यत्कृतं ते तदुत निजकृते श्रीहुताशेति मन्ये।
यस्मादस्मिँस्थितो यत्किमपि कथमपि क्वाप्युपाहर्तुमिच्छ-
त्यद्धा तद्गोपिकेशः स्ववदनकमले चारुहासे करोति। ४।

भावार्थ—भूतलपै प्रकट होयकें आपने श्रीहरिके चरण-कमलकी सेवा करवेको मार्ग, जो प्रकट कियो है, सो निश्चय करके अपने भक्तनके लियेही प्रकट कियो है, हे अग्निस्वरूप! यह मे मानूं हूं, कारण के यामार्गमे स्थित भक्त, कोईभी वस्तु, कैसी तरहसूंभी, कहूंभी रहके, अर्पण करनो चाहे तो वा वस्तुकूं श्री-गोपीजनवल्लभ अपने सुन्दर हासवारे मुखकमलमे धारण करे हैं।

क० समा० चरणौ अभोजे इवेति चरणाभोजे, व्रजपतेश्चरणाभोजे, व्रज-पतिचरणाभोजयो. सेवा, सैव आख्या यस्य तत् व्रजपतिचरणाभोजसेवाख्यं, तच्च वर्त्म च। ४।

उष्णत्वैकस्वभावोप्यतिशिशिरवचःपुंजपीयूषवृष्टी-
रार्तेष्वत्युग्रमोहासुरनृषु युगपत्तापमप्यत्र कुर्वन्।
स्वस्मिन्कृष्णास्यतां त्वं प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वमेतं-
द्यस्मादानंददं श्रीव्रजजननिचये नाशकं चाऽसुराग्नेः।५।

पनेकूं प्रकट करो हो, किन्तु अग्निपनो प्रकट नहीं करो हो, कारण के यह आपको स्वरूप व्रजजनसमूहमे तो आनंद देय है और आसुराग्निकूं नाश करे है।

कठि० समा०—अतिशिशिराणि च तानि वचासि च, तेषा पुंज॰, स पीयूषं च तस्य वृष्टय ता । ५ ।

आम्नायोक्तं यदंभोभवनमनलतस्तच्च सत्यं विभो यं-
त्संर्गादौ भूतरूपादभवदनलतः पुष्करं भूतरूपम् ।
आनंदैकस्वरूपात्त्वदधिभु यदभूत्कृष्णसेवारसाब्धि-
आनंदैकस्वरूपस्तदखिलमुचितं हेतुसाम्यं हि कार्ये । ६ ।

भावार्थ—वेदमे कह्यो जो अग्निसूं जलको होनो सो सत्य है, हे प्रभो! सृष्टिके आदिमें जैसे भूतस्वरूप अग्निसूं भूतस्वरूप जल भयो, तैसे या भूतलपै आनंदस्वरूप आपसूं यह श्रीकृष्णसेवारूप रससमुद्रभी आनंदस्वरूपही भयो है, और यह उचितभी है, कारण के कार्यमें कारणको साद्दश्य आवे है।

कठि० समा०—आनद एकं स्वरूपं यस्य स—तस्मात् । भुवीति अधिभु । ६ ।

स्वामिन्छ्रीवल्लभाग्ने ! क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः
प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिद्दक्षार्तितापो जनेषु ।
यत्प्रादुर्भावमाप्नोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्थं
द्दष्टेऽप्यस्मिन्मुखेन्दौ प्रचुरतरमुदेत्येव तच्चित्रमेतत् । ७ ।

भावार्थ—स्वामिन्! अग्निस्वरूप आचार्यवर्य आपके क्षणभर सन्निधानसूं, कृपाकरके भक्तनकें प्राणनसूं प्रिय श्रीहरिके मुखकम-

लकी देखवेकी इच्छाको ताप होय है, सो उचित है, परन्तु पीछें श्रीहरिके मुखकमलकू देखकेंभी विशेषतर ताप होय है, यह अति आश्चर्य है। प्रथम औत्सुक्यको ताप और पीछें विरहसूं ताप, यों विरोधको परिहार समझनो।

कठि० समा०—श्रीवल्लभ एव अग्निः, तत्सबुद्धौ। ७।

अज्ञानाद्यंधकारप्रशमनपटुताख्यापनाय त्रिलोक्या-
मग्नित्वं वर्णितं ते कविभिरपि सदा वस्तुतः कृष्ण एव।
प्रादुर्भूतो भवानित्यनुभवनिगमाद्युक्तमानैरवेत्य
त्वां श्रीश्रीवल्लभेमे निखिलबुधजना गोकुलेशं भजन्ते।८।

। इति श्रीविट्ठलदीक्षितकृत श्रीवल्लभाष्टक सम्पूर्णम्।

भावार्थ—या भूतलपै पण्डितननें आपको अग्निपनो केवल अज्ञानरूप अंधकारके दूर करवेको चातुर्य प्रकटकरवेके लिये ही कह्यो है, वास्तवमे तो आप श्रीकृष्णही प्रकट भये हो ऐसें अनुभव और शास्त्रादिके प्रमाणनसूं जानके, हे श्रीवल्लभाचार्य! सर्व विद्वान् आपकूं गोकुलेश जानकेंहीं भजे है।

कठि० समास—अज्ञानादि एव अधकारः, तस्य प्रशमनं, तस्मिन् पटुता, तस्या ख्यापनं तस्मै। ८।

श्रीवल्लभाष्टकव्रजभाषा सम्पूर्णा।

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

ब्रजभाषामें

श्रीयमुनाष्टककी विवृति ।

जयन्ति वल्लभाचार्यनखचन्द्रमरीचयः ।
यानन्तरा मादृशानां विस्पष्टार्था न तद्गिरः ॥ १ ॥

या श्रीयमुनाष्टके अर्थज्ञानपूर्वक पाठ करवेसों भजनानंदकी सिद्धि होयगी या आशयसों श्रीमद्वल्लभाचार्य आठ श्लोकनकेद्वारा श्रीयमुनाजीके स्वरूपको वर्णन करे है ।

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम् ।
तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना
सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् । १ ।

अन्वय—सकल सिद्धिहेतुं, मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम्, तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीं, यमुनां अहं मुदा नमामि ।

भावार्थ—आठप्रकारके ऐश्वर्य तथा पुष्टिमार्गीय समस्त सिद्धिनकों देयवेवारीं, और जलको दोषरूप मुरनामक जो दैत्य ताय मारनवारे श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें शोभायमान विशेषरेणु है अधिक जिनमें ऐसीं, और दोनो किनारेनपै लगे बनके प्रकट-सुगन्धवारे पुष्पनसों युक्त जलकरिके, देवदानवादिसों अथवा

दैन्यभाववारे और मानभाववारे भक्तनसों पूजित प्रद्युम्नजीके पिता श्रीकृष्णकी स्वरूपशोभाकों धारण करैं ऐसीं श्रीयमुनाजीकों मे आनन्दसों प्रणाम करूं हूं।

कठिनांशको समास—मुरारिपदपंकजयो. स्फुरन्ती चासौ अमन्दरेणुश्च। मुरादिपदपकजस्फुरदमदरेणु उत्कटा यस्या सा–ताम्। १।

श्रीयमुनाजीके प्राकट्यको प्रकार बतामें है–

कलिंदगिरिमस्तके पतदमंदपूरोज्वला
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलोन्नता।
सघोषगतिदंतुराऽसमधिरूढदोलोत्तमा
मुकुन्दरतिवर्द्धिनी जयति पद्मबंधोः सुता। २।

अन्वय—कलिन्दगिरिमस्तके पतदमंदपूरोज्ज्वला, विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलोन्नता, सघोषगतिदंतुरा, असमधिरूढदोलोत्तमा, मुकुन्दरतिवर्द्धिनी पद्मबंधोः सुता जयति।

भावार्थ— सूर्यमंडलमे स्थित प्रभुके हृदयमेसूं रसरूप प्रकट होयके फिर कलिन्द नामक पर्वतके शिखरपै गिरते बहुतसे प्रवाहसो उज्वल दीखतीं, और विलासपूर्वक गमनसों शोभायमान और अच्छीतरह दीखतीं शिलान करिकें, उँची मालुम पडतीं, और ध्वनिसहित चलवेसों नतोन्नत (उंचीनीची) होती, ताहीसों मानो उत्तम हिन्दोलामे अच्छीतरह बैठी होंय कहा ऐसी दीखतीं ऐसी, श्रीकृष्णमे प्रीतिकों बढायवेवारी श्रीसूर्यकी पुत्री श्रीयमुनाजी सर्वोत्कर्षसों विराजमान हैं।

कठि० समास—विलासेन गमनं विलासगमनं, प्रकटाश्च ते गडशैलाश्च प्रकटगडशैला. विलासगमनेन उल्लसन्तश्च ते प्रकटगंडशैलाश्च विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलाः विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलै उन्नता सा। २।

भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः ।
तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका-
नितंबतटसुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम् । ३ ।

अन्वय—भुवनपावनीं, भुवं अधिगतां, प्रियाभिः इव अनेकस्वनैः शुकमयूरहंसादिभिः सेवितां, तरङ्गभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुकानितंबतटसुन्दरीं कृष्णतुर्यप्रियां नमत ।

भावार्थ—भगवद्भावको दानकरके तथा शरीरकूं भगवत्सेवोपयोगी बनायके सकल लोककों पवित्र करनवारीं, और याहीके लिये भूतलपैं पधारीं, तथा प्रियसखीनकी तरह विविध प्रकारसो बोलवेवारे सूआ मोर हंसआदि पक्षीन करिके सेवित, और लहररूप भुजानके धारण किये ककणनमे प्रकट दीखती मोती जैसी चमकती रेणुसों युक्त कटिपश्चाद्भागसों सोभायमान ऐसीं, श्रीकृष्णकी चोथी पटरानी यूथाधिपति श्रीयमुनाजीकों सर्वलोक प्रणाम करो ।

कठि० समास—तरंगा एव भुजौ, तरगभुजौ, तयो कंकणानि तरगभुजककणानि, तेषु प्रकटा तरगभुजककणप्रकटा, मुक्तिका इव वालुका मुक्तिकावालुका, तरगभुजककणप्रकटा चासौ मुक्तिकावालुका च तरगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका, तया युक्तं च तत् नितंबतट च, तरगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुकानितबतटम्, तेन सुन्दरी, ताम् । ३ ।

या श्लोकमें प्रभु और श्रीयमुनाजीके स्वरूपकी समानता बतायी है—

अनंतगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे ।

विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय । ४ ।

अन्वय—अनंतगुणभूषिते, शिवविरंचिदेवस्तुते, घनाघननिभे, ध्रुवपराशराभीष्टदे, विशुद्धमथुरातटे, सकलगोपगोपीवृते, कृपाजलधिसंश्रिते, सदा मम मनः सुखं भावय ।

भावार्थ—'अनन्त०' आदि सातों पद प्रभुके अर्थमे सप्तमी विभक्ति तथा विशेषण समझने और श्रीयमुनाजीके अर्थमे संबोधन समझने । अनंत गुणनसों भूषित, और शिव ब्रह्मा आदि देवतानसों स्तुति करी गई, और सघन मेघसदृश कान्तिवारी और ध्रुव पराशर आदि ऋषिनको सकल मनोरथके देनवारी, और भगवल्लीलाधाम मथुराजी जाके तटपै है, और समग्र गोपगोपाङ्गनानसों शोभित, और अनुग्रहके समुद्र श्रीकृष्णके आश्रयमे रहनवारीं हे श्रीयमुनाजी आप मेरे मनके आनन्दको विचार करो, अर्थात् जैसे मेरे मनकूं सुख होय तैसें करो । यह श्लोक श्रीयमुनाजी और श्रीकृष्णमे समानता बतायवेवारो है, तासूं यह सब विशेषण श्रीकृष्णमेंभी लगे है । वा पक्षमे यह अर्थ करनो कि हे श्रीयमुनाजी ! एसे श्रीकृष्ण भगवान्में मेरे मनकी प्रीतिकूं कराओ ।

कठि० समास—अनंताश्च ते गुणाश्च तैर्भूषिता अनंतगुणभूषिता तत्सबुद्धौ । श्रीकृष्णपक्षे, अनंतगुणैर्भूषितस्तस्मिन् । एव सर्वत्राप्यूह्यम् । ४ ।

यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियंभावुका
समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् ।

तया सदृशतामियात्कमलजा सपत्नीव य-
द्धरिप्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ५

अन्वय—यया समागमनतः चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियं-भावुका, सेवतां भुक्तिमुक्तिदा अभवत्, तया सपत्नी इव सदृशतां (का) इयात्, यत् (इयात्—तर्हि) कमलजा इयात्, तया हरि-प्रियकलिन्दया मे मनसि सदा स्थीयताम् ।

भावार्थ—जिन श्रीयमुनाजीके सग मिलवेसों गंगाजी भग-वान्के प्रिय करवेवारी भई और अपने सेवकनकों समग्रसिद्धि देयवेवारी भई, उन श्रीयमुनाजीके, सौतकीतरह समानभावको कौन प्राप्त होय, यदि होंय तो श्रीलक्ष्मीजीही प्राप्त होंय, एसी भगवानकों अतिप्रिय कलिदोषनकां दूरकरवेवारी श्रीयमुनाजी मेरे हृदयमे सदा निवास करो ।

कठि० समास—समान पतिर्यस्या सा। कलिं द्यतीति, हरिप्रिया चासौ कलिन्दा च, तया । ५ ।

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः ।
यमोपि भगिनीसुतान्कथमु हंति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः । ६ ।

अन्वय—हे यमुने ! सदा नमः अस्तु, तव चरित्रं अत्यद्भुतं (अस्ति) ते पयःपानतः जातु यमयातना न भवति यमः अपि दुष्टान् अपि भगिनीसुतान् उ (अहो) कथं हन्ति, तव सेवनात् यथा गोपिकाः (तथा) हरेः प्रियः भवति ।

भावार्थ—हे श्रीयमुनाजी ! आपकों सदा नमस्कार हो, आपके चरित्र बहुत आश्चर्यकरवेवारे हैं, आपके जलके पानकरवेसों कभी यमसंबधी पीडा नहीं होय है, यमराजाभी दुष्ट ऐसेभी अपनी भेनके पुत्रनकूं कैसे मारै, आपकी सेवा करवेसों श्रीगोपीजननकी तरह (जीवभी) श्रीहरिकों प्रिय होय है ।

कठिनांश समास—पयस पानं पय पानं, पय पानात् इति पय पानत ।

ममाऽस्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये ।
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं संगमा-
त्तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः ।७।

अन्वय—हे मुकुन्दप्रिये ! तव सन्निधौ मम तनुनवत्वं अस्तु, एतावता मुररिपौ रतिः दुर्लभतमा न (अस्ति), अतः तव लालना अस्तु, सुरधुनी तव एव संगमात् भुवि परं कीर्तिता, तु पुष्टिस्थितैः कदा अपि न (कीर्तिता) ।

भावार्थ—हे हरिप्रिय यमुनाजी आपके निकटमें मेरो शरीर दिव्य नवीन होय जाय, अर्थात् लीलामें प्रवेश करवेलायक अलौकिक होयजाय, इतनेसोंही मुरदानवके मारनवारे श्रीकृष्णमे प्रीति होनी अतिदुर्लभ नहीं है, ताकारणसों आपके (स्तुतिरूप) लाडचाव हो, श्रीगगाजी आपके ही समागमसों भूतलमे स्तुतिकरी गई हैं, किन्तु पुष्टिस्थित जीवनने याविषयमे आपके सिवाय उनकी स्तुति नहीं करी है, क्यों कि उनसों मुक्ति मिले है, परन्तु लीलोपयोगी देह नहीं मिले है । ७ ।

स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि ! प्रिये !
हरेर्यदनु सेवया भवति सौख्यमामोक्षतः ।

इयं तव कथाधिका सकलगोपिकासंगम-
स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः । ८ ।

अन्वय—कमलजासपत्नि! प्रिये! तव स्तुतिं कः करोति, यत् हरेः अनु सेवया आमोक्षतः सौख्यं भवति, तव कथा इयं अधिका, (यत्) सकलगात्रजैः सकलगोपिकासंगमस्मरश्रम-जलाणुभिः संगमः भवति ।

भावार्थ—लक्ष्मीकी सपत्नि (सौत) और हरिकों प्रिय हे श्रीयमुनाजी! आपकी स्तुति कौन करसकै, कारण के जो श्रीहरिके पीछे लक्ष्मीकी भी सेवा करै, तो ताकों मोक्षपर्यन्तको सुख मिल है, परन्तु आपकी तो कथा इतनी अधिक है, के सर्व अगसो उत्पन्न भये, जो सकल गोपीजनसों श्रीप्रभुकी लीला, ताके संबंधी जो प्रस्वेदजल उनके बिन्दुनसों आपको संगम होय है ।

कठि० समास—सकलगोपिकाभिः सगमः सकलगोपिकासंगमः, तेन स्मरः सकलगोपिकासंगमस्मरः, तस्य श्रमजलं सकलगोपिकासगमस्मरश्रम-जलं, तस्य अणवः, तैः । ८ ।

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ।
तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च संतुष्यति
स्वभावविजयो भवेद्वदति वल्लभः श्रीहरेः । ९ ।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ।

अन्वय—हे सूरसूते ! तव इदं अष्टकं (यः) सदा मुदा पठति (तस्य) समस्तदुरितक्षयो भवति, वै मुकुन्दे रति. भवति, तथा सकलसिद्धयः (भवन्ति) च मुररिपुः संतुष्यति, स्वभावविजयः भवेत् (इति) श्रीहरेः वल्लभः वदति ।

भावार्थ—हे सूर्यकी पुत्री श्रीयमुनाजी आपके या यमुनाष्टकको जो कोई सदा हर्षसों पाठ करेगो, ताके समग्र पापनको नाश होयगो और निश्चय करिके श्रीहरिमे प्रीति होयगी, और हरिप्रीति होयवेसों पुष्टिमार्गीय सिद्धि होयगी, तथा श्रीहरि प्रसन्न होंयगे, और यदि स्वभाव दुष्ट होय तो भगवद्भक्ति करवे लायक स्वभाव होय जाय है, एसे श्रीहरिके प्रिय श्रीवल्लभाचार्य कहे हैं । ९ ।

॥ श्रीव्रजभाषासहित श्रीयमुनाष्टक सम्पूर्ण ॥

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें.

बालबोधकी विवृति ।

अब पुरुषार्थनके विषयमे होते सन्देहनकों दूर करवेके लिये श्रीमद्वल्लभाचार्य बालबोधनामक ग्रंथको आरम्भ करे हैं ।

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसंग्रहम् ।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम् । १ ।

अन्वय—सदानन्दं हरि नत्वा बालप्रबोधनार्थाय सुविनिश्चितं सर्वसिद्धान्तसंग्रहं (अहं) वदामि ।

भावार्थ—सच्चिदानंद श्रीकृष्णकों प्रणाम करके, अपने हिताहितको न जानवेवारे जीवनकों पुरुषार्थसंबंधी ज्ञान करायवेके लिये वेदशास्त्रद्वारा निश्चयकिये सर्वसिद्धान्तनके संग्रहकों मे कहूं हूं ।

कठि० समास—प्रकर्षेण बोधनं प्रबोधनं, बालाना प्रबोधनं बालप्रबोधनं, बालप्रबोधनमेव अर्थ बालप्रबोधनार्थं, तस्मै । १ ।

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम् ।
जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिताः । २ ।

अन्वय—मनीषिणां धर्मार्थकाममोक्षाख्याः चत्वारः अर्थाः (सन्ति) ते जीवेश्वरविचारेण द्विधा हि विचारिताः ।

भावार्थ—बुद्धिमान् पुरुषनके, धर्म अर्थ काम और मोक्ष-

नामके चार पुरुषार्थ है, अर्थात् मनुष्य प्रयोजन है, वे चारों पुरुषार्थ जीव (ऋषिलोग) और ईश्वर (वेद) के विचारसूं दोतरह विचारे गये है, यह बात निश्चय है। मूलमे पुरुषार्थशब्द न देके जो 'अर्थाः' ऐसो शब्द दीनो है तासूं मालुम पडे हे के वास्तवमे भक्तिमार्गीय पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ है। ये चारतो पुरुषार्थाभास हैं।

कठि० समास—धर्मार्थकाममोक्षा आख्या येषा ते। २।

अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः।
लौकिका ऋषिभिः प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया। ३।

अन्वय—साध्यसाधनसंयुताः अलौकिकाः तु वेदोक्ताः, लौकिकाः तथा एव ईश्वरशिक्षया ऋषिभिः प्रोक्ताः।

भावार्थ—साध्य (यज्ञादि) और साधन (स्रुक्स्रुवादि, यज्ञकी सब सामग्री) सों युक्त, अलौकिक अर्थात् ईश्वरके विचारे पुरुषार्थ तो वेदमे कहे हैं, और जीवविचारित पुरुषार्थ, भगवान्की वैसी ही आज्ञा होयवेसूं ऋषिनने कहे हैं, अर्थात् याज्ञवल्क्यादिस्मृतिनमें कहे हैं।

कठिनांशसमास—साध्य च साधनं च साध्यसाधने, ताभ्या सयुता, ते। ३।

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः।

अन्वय—लौकिकान् तु (अहं) प्रवक्ष्यामि, यतः आद्याः वेदात् (वेदमाश्रित्य) स्थिताः (सन्ति)।

भावार्थ—ऋषिनके विचारे पुरुषार्थनको तो मै कहूं हूं, कारणके पहले (ईश्वरविचारित अलौकिक) पुरुषार्थ, वेदको आश्रय लेके स्थित है अर्थात् वेदमे हैं, निःसंदेह होयवेसूं अथवा जीवके अशक्य होयवेसूं उनके कहवेकी जरूरत नहीं है।

धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात् ।४।
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते ।

अन्वय—धर्मशास्त्राणि च नीतिः च कामशास्त्राणि क्रमात् त्रिवर्गसाधकानि इति (हेतोः) तन्निर्णयः (अस्माभिः) न उच्यते।

भावार्थ—मन्वादि धर्मनिरूपण करवेवारे शास्त्र, और कामन्दकीयादि नीतिशास्त्र (अर्थशास्त्र) तथा वात्स्यायनादि कामशास्त्र, क्रमसों धर्म अर्थ काम इन त्रिवर्गके साधक है तासों इनको निर्णय हम नहीं करे है क्योंकि केवल भगवदासक्त भक्तनकूं उनकी अपेक्षा नही है। ४।

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः।५।
द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ ।
त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः। ६।

अन्वय—स्वतः परतः द्विधा लौकिके मोक्षे, द्वे द्वे (कृत्वा इति यावत्) चत्वारि शास्त्राणि (सन्ति)। तत्र त्यागात्यागविभागेन सांख्ययोगौ स्वतः प्रकीर्तितौ। सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः (अस्ति)

भावार्थ—स्वाश्रय और पराश्रय दो प्रकारके ऋषिविचारित मोक्षमें दो दो करके चार शास्त्र है, उन चार शास्त्रनमे अनात्म-

वस्तुको त्याग और अत्यागके भेदसों सांख्य और योग यह दोनों स्वाश्रय मोक्षशास्त्र कहे गये है, और सांख्यशास्त्रमे अनात्मवस्तुको त्याग करनो कह्यो है ।

कठि०समास—त्यागश्च अत्यागश्च त्यागात्यागौ, तयो विभाग ,तेन।५–६।
साख्योक्तमोक्षको स्वरूप कहे हैं

अहंताममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ ।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते । ७ ।

अन्वय—अहंताममतानाशे सति सर्वथा निरहंकृतौ सति (जीवे इति शेष·) यदा जीवः स्वरूपस्थः (भवति) (तदा) सः कृतार्थः निगद्यते ।

भावार्थ—देहकूं अपनो स्वरूप माननो सो अहंता, और भगवदीयवस्तुमे अपनेपनको भाव करनो सो ममता, इन दोनोनके नाश होयवेसो जब जीव 'मे कछु नही करूं हूं' एसे सर्वथा अहंकाररहित होयजाय और अपने स्वरूपमे स्थित होय तो वह जीव कृतार्थ कह्यो जाय है, अर्थात् जा जीवकू, 'मे ब्रह्मांश होयवेसो ब्रह्मस्वरूप हू' एसे ज्ञान होय वह जीव मुक्त कह्यो जाय है ।

कठि० समास—निर्गता अहङ्कृतिर्यस्मात्, स , तस्मिन् । ७ ।

तदर्थं प्रक्रिया काचित्पुराणेऽपि निरूपिता ।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यतः । ८ ।

अन्वय—तदर्थं ऋषिभिः बहुधा प्रोक्ता काचित् प्रक्रिया पुराणे अपि निरूपिता अबाह्यतः एकं फलम् (भवति) ।

भावार्थ—वा सांख्यमे कहे मोक्षके लिये, ऋषिनने अनेक प्रकारसू कही कोईक पद्धति (रीत) श्रीभागवतादिपुराणनमे भी

'मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः' इत्यादिश्लोकनसूं निरूपण करी है, अनीश्वर साख्यकूं छोडके सबको एक फल होय है।

कठि० समास—बाह्यात् इति बाह्यत , न बाह्यत अबाह्यत । ८ ।

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि।
यमादयस्तु कर्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता । ९ ।

अन्वय—अत्यागे (सति) हि योगमार्गः हि त्यागः अपि मनसा एव (कर्तव्यः), तु यमादयः कर्तव्या· योगे सिद्धे (सति) कृतार्थता (भवति) ।

भावार्थ—सर्व वस्तुको त्याग नही करवेमे योगमार्ग कह्यो जाय है, यह बात निश्चय है, और त्यागभी मनसूं करनो, अर्थात् मानसिक त्याग करै, और यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि आदि आठ योगके अंग तो जरूर साधने चहिये, जो योग सिद्ध होय जाय तो वह जीवन्मुक्त कह्यो जाय है । ९ ।

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते ।
ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते । १० ।
ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किंचिदुदीरितम् ।

अन्वय—पराश्रयेण मोक्षः तु द्विधा (अस्ति) स अपि निरूप्यते, ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातः तद्रूपेण सुसेव्यते, ते सर्वार्था आद्येन न, (यतः) किंचित् शास्त्रं उदीरितं (अस्ति) ।

भावार्थ—देवनमे श्रेष्ठ विष्णु और शिवके आश्रयसों मोक्ष तो दो प्रकारको है, वहभी कह्यो जाय है। वेदज्ञरूपसूं किंवा ब्रह्मज्ञपनेसुं ब्रह्मा ब्राह्मणपनेकों प्राप्त भयो है, और ब्राह्मण रूपसूं पूजित

है । तासो पूर्वोक्त चारो पुरुषार्थ ब्रह्मासू नही मिले है, कारण, ब्रह्माने थोडोसो वैखानसमोक्षशास्त्र कह्यो है । १० ।

अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ । ११ ।
वस्तुनः स्थितिसंहारकार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ ।

अन्वय—अतः वस्तुनः स्थितिसंहारकार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ शिवः च विष्णुः च (द्वौ अपि) जगतः हितकारकौ (स्तः) ।

भावार्थ—ब्रह्मासो मोक्ष नहीं मिले है तासो, जगत्के संहार और स्थिति (पालन) करवेवारे, और पाशुपत तथा पञ्च-रात्र शास्त्रके चलायवेवारे, शिव और विष्णु दोनों पुरुषार्थ प्रदा-नकरके जगत्के हित करवेवारे है ।

कठि० समास—स्थितिश्च सहारश्च स्थितिसहारौ, तौ कार्ये ययो., तौ । ११ ।

ब्रह्मैव तादृशं यस्मात्सर्वात्मकतयोदितौ । १२ ।
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।

अन्वय—यस्मात्, तादृश ब्रह्म एव, (तस्मात् तौ) सर्वात्म-कतया उदितौ, (किच) नत्तच्छास्त्रे तयो. निर्दोषपूर्णगुणता कृता (अस्ति) ।

भावार्थ—जाकारणसों ब्रह्मही विष्णु और शिवरूप, होय गयो है, तासों, शास्त्रमे उन दोनोनकों सर्व जगत्के मूलकारण कहे है, और अपने २ शास्त्रमे उन दोनोंनको दोषरहितपनो और सर्वगुणसंपन्नपनो कह्यो है । अर्थात् गुणावतार विष्णु और शिवमे जो उन उनके शास्त्रमे सर्वात्मकपनो आदि परब्रह्म गुण बताये है वे सब परब्रह्मकेही है उनके नहीं ।

कठि० समास—सर्वस्य आत्मा सर्वात्मा, सर्वात्मा एव सर्वात्मक, सर्वात्मकस्य भाव सर्वात्मकता, तया। निर्गता दोषा यस्मात् स, पूर्णा गुणा यस्मिन् स, निर्दोषश्चासौ पूर्णगुणश्च निर्दोषपूर्णगुण, तस्य भाव तत्ता। १२।

भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि।
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः। १३।

अन्वय—यद्यपि भोगमोक्षफले दातुं द्वौ अपि शक्तौ (स्त·), तु भोगः शिवेन मोक्षः विष्णुना इति विनिश्चयः (अस्ति)।

भावार्थ—यद्यपि भोग और मोक्षरूप फलकों देयवेमे शिव और विष्णु दोनोही समर्थ है, किन्तु भोग शिवसों और मोक्ष विष्णुसों मिले है यह शास्त्रको विशेष निश्चय है जो कहूं उन दोनोनकों दोनो पुरुषार्थदेवेको वर्णन आवे है वह उनमे वेसो सामर्थ्य है तासू है। देवेको अभिप्राय वहां नही समझनो। १३।

लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्।
अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि। १४।

अन्वय—लोके अपि यत् (वस्तु) प्रभुः भुङ्क्ते, तत् (वस्तु) कर्हिचित् न यच्छति, हि तत् अपि अतिप्रियाय क्वचित् एव दीयते।

भावार्थ—लोकमेभी जो वस्तु प्रभु, स्वयं भोगे है, वा वस्तुको कभीभी कोईको नही देय है। किन्तु अपने भोगवेकी वा वस्तुकोंभी अतिप्रिय भक्तके लिये कोईकसमय देयभी हैं। १४।

नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः।
प्रत्येकं साधनं चैतद्द्वितीयार्थे महाञ्छ्रमः। १५।

अन्वय—नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः (सिद्ध्यति), एतत् प्रत्येक साधनं, द्वितीयार्थे महान् श्रमः (भवति)।

भावार्थ—शिव और विष्णु यह दोनो देवता यदि अपने भोगवेमें नियमकिये पुरुषार्थकोभी दान करदे तो वासों भक्तकों तदाश्रय और तदीयपनो जान्यो जाय है, यह शिवको भजन और विष्णुको भजन एक २ फलको साधन है, दूसरे पुरुषार्थके देते समय शिव और विष्णुकूं (गुणपरिवर्तन करवेसो) अतिश्रम होय है । १५ ।

व्युत्पत्ति—तस्य अय तदीय , तदीयस्य भाव तदीयत्वम् ।

जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा ।
श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति । १६ ।

अन्वय—जीवा. स्वभावतः दुष्टाः (सन्ति) दोषाभावाय सर्वदा श्रवणादि (कर्तव्यं) ततः प्रेम्गा सर्वं कार्यं सिद्ध्यति हि ।

भावार्थ—जीवमात्र अपने देव मनुष्य आसुर आदि स्वभावनसों दोषवारे है (स्वरूपसूं नहीं), वा दोषकी निवृत्तिके लिये, श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन पूजा प्रणाम दासभाव मित्रभाव और आत्मनिवेदन यह भगवानकी नवधा भक्ति करनी चहिये, या नवधा भक्तिसों श्रीहरिमें प्रेम होय है, और वा प्रेमसों सर्व ऐहिक पारलौकिक कार्य सिद्ध होय है, यह बात निश्चय है । १६ ।

मोक्षस्तु विष्णोः सुलभो भोगश्च शिवतस्तथा ।
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद्ध्रुवम् । १७ ।

अन्वय—मोक्षः तु विष्णोः सुलभः (भवति), च तथा भोगः शिवतः (भवति), आत्मनः समर्पणेन हि ध्रुवं तदीयत्वं भवेत् ।

भावार्थ—मोक्ष तो विष्णुसू सुलभ है, और तेसेही भोग शिवसूं सुलभ है, आत्मीय सर्व वस्तुसहित आत्माके भगवच्चरणारविन्दमे अर्पण करवेसों निश्चय करके निश्चल तदीयपनो होय है। १७।

अतदीयतया चापि केवलश्चेत्समाश्रितः ।
तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्समाचरेत् । १८ ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै भारद्वैगुण्यमन्यथा ।
इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः । १९ ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो बालबोध सम्पूर्ण ।

अन्वय—च अतदीयतया अपि चेत् केवलः समाश्रितः (तर्हि) तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै स्वधर्मं अनुतिष्ठन् किंचित् समाचरेत्, अन्यथा भारद्वैगुण्यं (भवति), एवं इति सर्वं कथितं एतज्ज्ञाने पुनः भ्रमः न (भवति)।

भावार्थ—और पूर्णाधिकारी न होयवेसूं जो तदीयपनो सिद्ध न भयो होय तोभी यदि तदीयपनेसूं रहित जीव भगवानको आश्रयमात्र ले, तो तदाश्रय और तदीयपनेको ज्ञान होयवेके लिये, अपने वर्णाश्रमधर्ममे रहतो, कछुक दीक्षाग्रहण अथवा मन्त्रोपदेशग्रहणरूप सदनुष्ठान करै, जो एसो न करै तो दुगनो भार होय है अर्थात् एक वर्णाश्रमधर्मपरित्यागरूपभार और दूसरो निष्फलश्रवणादि साधनरूपभार माथे पडे है, या रीतिसों यह सब हमने कह्यो याको अच्छीतरह ज्ञान होय तो फिर पुरुषार्थ विषयमें सन्देह नही होय ।

कठि० समास—तदीयस्य भाव तदीयता, न तदीयता अतदीयता, तया । तदाश्रयश्च तदीयत्व च तदाश्रयतदीयत्वे, तयो बुद्धि तदाश्रयतदीयत्वबुद्धि, तस्यै। द्वौ गुणौ यस्य स, द्विगुण, तस्य भाव द्वैगुण्य भारस्य द्वैगुण्य भारद्वैगुण्यम्। १८। १९।

ऐसें यह बालबोधकी व्रजभाषाटीका सम्पूर्णा भई ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें.

सिद्धान्तमुक्तावलीकी विवृति।

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता। १।

अन्वय—हरिं नत्वा स्वसिद्धान्तविनिश्चयं (अहं) प्रवक्ष्यामि, सदा कृष्णसेवा कार्या सा मानसी परा मता।

भावार्थ—सर्व दुःख दूर करवेमे समर्थ श्रीकृष्णकूं नमन करके, अपने सिद्धान्तके निश्चयकों में कहूंगो, सर्वकालमे श्रीहरिकी सेवा करनी चहिये, वो सेवा (भक्ति) मानसिक होनी चहिये, ये फलरूप कही है। १।

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्। २।

अन्वय—तत्प्रवणं चेतः सेवा, तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा (कर्तव्या), ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिः (किंच) ब्रह्मबोधनं (भवति)।

भावार्थ—श्रीहरिमे चित्तको एकतान होनो ही सेवा कही जाय है, वैसी सेवाकी सिद्धिकेलिये शरीरसों और मण्डानादिद्वारा द्रव्यसों सेवा (भक्ति) करनी चहिये, वा मानसिकभक्तिसो, अहंताममता आदि संसारकी निवृत्ति, और भगवन्माहात्म्यको ज्ञान, ये दो अवांतर फल मिले है।

क० समा०—तस्मिन् प्रवण तत्प्रवण । तनुश्च वित्त च तनुवित्ते तनुवित्ताभ्या जाता तनुवित्तजा । २ ।

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत् ।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद्विलक्षणम् । ३ ।
अपरं, तत्र पूर्वस्मिन्वादिनो बहुधा जगुः ।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा । ४ ।

अन्वय—हि परं ब्रह्म तु कृष्णः (अस्ति) सच्चिदानन्दकं बृहत् (अस्ति) तत् हि एकं सर्व स्यात्, अपरं तस्मात् विलक्षणं, तत्र पूर्वस्मिन् वादिनः बहुधा जगुः, मायिक सगुणं कार्य च स्वतन्त्र इति एकधा न जगुः ।

भावार्थ—आनन्दब्रह्मवल्लीमे अक्षरब्रह्मके आनन्दकी गणना करी है किन्तु वाके आगे कह्यो है के परब्रह्मके आनन्दमे मनवाणीभी नहीं पहुचे है तासूं शास्त्रमे श्रीकृष्णकूं ही परब्रह्म कहे है । तासूं परब्रह्म तो श्रीकृष्ण है । सत्चित्गणितानंद अक्षरब्रह्म है । वो अक्षरब्रह्म निश्चयकरके दो प्रकारको है, एक सर्वजगत्रूप है, और दूसरो वा जगत्रूपसों जुदो है, जाको ज्ञानी विचार करे है । उन दोनोंरूपनमे, पहले जगत्रूप ब्रह्मके विषयमे वादी अर्थात् विवाद करवेवारे अनेक प्रकारसों कहे है । कितनेही या जगत्कूं मायासों दीखतो कहें हैं । कितनेही त्रिगुणात्मक अर्थात् सत् रजस् तमस् इन तीन गुणसूं बन्यो है एसे कहे है । और कोई कहे हैं कि यह जगत् ईश्वरने बनायो है अर्थात् ईश्वरको कार्य है । कितनेही कहे है कि प्रवाहकी तरह अनादिकालसूं स्वतन्त्र ही चल्यो आवेहे ऐसें एक प्रकारसों नहीं कहे है ।

कठि० समास—अल्प आनद आनन्दक, सत् च चित् च आनन्दकश्च सच्चिदानन्दका, ते सन्ति यस्मिन् तत् सच्चिदानन्दकम्। ३। ४।

तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम्।
द्विरूपं चापि गंगावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी। ५।
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा।
मर्यादामार्गविधिना तथा ब्रह्माऽपि बुद्ध्यताम्। ६।

अन्वय—तत् एव एतत्प्रकारेण भवति इति श्रुतेः मतं, च द्विरूपं अपि गंगावत् ज्ञेयं, (एका) सा जलरूपिणी (अपरा) माहात्म्यसयुता मर्यादामार्गविधिना सेवता नृणा भुक्तिमुक्तिदा (अस्ति) तथा ब्रह्म अपि बुध्यताम्।

भावार्थ—वो अक्षरब्रह्म ही या जगत्प्रकारसों होय है ये वेदको मत है। और दोरूपवारो अक्षरब्रह्मभी गंगाकी तरह जाननो। एक गंगा जलरूप है। और दूसरी माहात्म्यसंयुक्त तीर्थरूप जो मर्यादामार्गकी रीतिसू सेवनकरवेवारे मनुष्यनकूं भोग और मोक्ष देवेवारी है। ऐसेहीं अक्षरब्रह्मभी दो प्रकारको जाननो।

कठिनांश समास—द्वे रूपे यस्य तत् द्विरूप,। ५। ६।

तत्रैव देवतामूर्तिर्भक्त्या या दृश्यते क्वचित्।
गंगायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये। ७।

अन्वय—तत्र एव या देवतामूर्तिः (सा) भक्त्या च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये क्वचित् गंगायां दृश्यते।

भावार्थ—वा तीर्थरूप और जलरूप गंगामे ही जो देवता-

---

१ अत्र चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकात्–अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यमिति बोध्यम्। अनुवादक।

रूप गंगाकी मूर्ति है, वह गंगा, भक्तिके उत्कर्ष होयवेसूं और विशेषकरके जाकूं प्रवाह और मूर्तिमें अभेद बुद्धि होय वा भक्तकूं ही कोईसमय गंगामे दीखे है ।

क० समा०—अभेदेन बुद्धि अभेदबुद्धि प्रवाहे अभेदबुद्धिर्यस्य स, तस्मै । ७ ।

प्रत्यक्षा सा न सर्वेषा प्राकाम्यं स्यात्तया जले ।
विहिताच्च फलात्तद्धि प्रतीत्याऽपि विशिष्यते । ८ ।

अन्वय—सा सर्वेषा प्रत्यक्षा न, तया जले प्राकाम्य स्यात्, हि तत्, विहितात् फलात् च प्रतीत्या अपि विशिष्यते ।

भावार्थ—वह देवमूर्ति गगा सबनकूं प्रत्यक्ष नही दीखे है, वा गंगासू ही जलमे स्नान आचमन आदि उत्तम कार्य करनो सिद्ध होय है, कारणके वह जल, शास्त्रमे कहे फलकूं देयवेसू और महात्मानके विश्वाससूंभी अन्यजलकी अपेक्षा उत्तम समझो जाय है । ८ ।

यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत् ।
यथा देवी तथा कृष्णस्तत्राप्येतदिहोच्यते । ९ ।

अन्वय—यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता (गङ्गा पवित्रीकर्तुं) तथा बृहत् (ब्रह्म सर्वशक्तं) यथा देवी (गङ्गा) तथा कृष्णः (परब्रह्म) तत्रापि इह एतद् उच्यते ।

भावार्थ—तासूं जैसे संकोचविकासी गंगाको जल है, तैसेही यह जगत्रूप ब्रह्म भी आविर्भाव तिरोभाव धर्मवारो है, और जैसे पवित्रकरवेवारी सामर्थ्यरूप गंगा है, तेसे सर्वशक्तिमान् अक्षरब्रह्म है, तथा जैसे आधिदैविक देवीरूप गंगा है, वै-

सेही परब्रह्म श्रीकृष्णभी आधिदैविक स्वरूप है, तामेभी यहां इतनो और कह्यो जाय है या गंगाजीके दृष्टान्त सूं ये समझनो के श्रीगंगाके जलमें और गंगाजीमे यद्यपि भेद नहि है तथापि वा जलमे यदि तिर्थबुद्धि न होय तो स्नानादि करवे वेभीफल नही होय है वैसे जगत्मे और ब्रह्ममे यद्यपि भेद नही है तोभि जगत्मे ब्रह्मबुद्धि न राखके जो याकी उपासना करै तो ब्रह्मोपासनाको फल नही होय है। तासूं जो लोग कहे है के जो जगत ब्रह्मही होय तो हम अपनी स्त्रीसूं स्नेह करे है वाको फल ब्रह्मोपासनाको फल मिलनो चहिये ये शका दूर भई। ९।

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः।
देवतारूपवत्प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः। १०।

अन्वय—जगत् तु त्रिविधं प्रोक्तं, ततः ब्रह्मविष्णुशिवा. देवतरूपवत् प्रोक्ता, ब्रह्मणि, हरि इत्थं मतः।

भावार्थ—जगत् तो सत्वादि गुणनके भेदसूं तीन प्रकारको है, तासूं वा जगत्के अधिष्ठाता ब्रह्मा विष्णु और शिव, लोकमे उपासनाकरवेलायक देवता कहे है। और अक्षरब्रह्ममे श्रीकृष्णही सेव्य देवता माने है। अर्थात् ब्रह्मज्ञानी मुक्त जीवकूं भजवेलायक तो श्रीकृष्ण है।

कठि० समास—तिस्रो विधा यस्य तत्। देवतारूपेण तुल्या देवतारूपवत्। १०।

कामचारस्तु लोकेऽस्मिन्ब्रह्मादिभ्यो न चाऽन्यथा।
परमानन्दरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः। ११।

अन्वय—अस्मिन् लोके कामचारः तु ब्रह्मदिभ्यः, (भवति),

च अन्यथा न, स्वात्मनि तु परमानन्दरूपे कृष्णे निश्चयः (भवति)।

भावार्थ—या सात्विकादि तीन प्रकारके लोकमे उन २ के भक्तनकी लौकिक मनोरथ पूर्ति तो ब्रह्मादि तीनो देवतानसूं ही होय है। और तरहसूं नहीं होय सकै। और अपने आत्माके लिये तो नित्य निरवधिक आनन्दरूप श्रीकृष्णमे ही सकल मनोरथपूर्तिको समूह होय है।

कठि० समास—स्वस्य आत्मा स्वात्मा, तस्मिन्। स्वात्मने इत्यर्थं। अत्र '**निमित्तात्कर्मयोगे**' इति सूत्रेण 'चर्मणि द्वीपिन हन्ती'तिवत् चतुर्थ्यर्थे सप्तमी ज्ञेया। नि शेषाणा चय निश्चय, सर्वकाममूलभूतानन्दप्राप्तिरित्यर्थ ।११।

अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम्।
आत्मनि ब्रह्मरूपे हि छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः।१२।

अन्वय—अतः तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिः विधीयतां, हि ब्रह्मरूपे आत्मनि, व्योम्नि छिद्रा इव, चेतनाः (सन्ति)।

भावार्थ—तासों सर्ववस्तु ब्रह्मात्मक है, या भावसों श्रीकृष्णमें अंतःकरण लगाओ, ब्रह्मांश होयवेसों ब्रह्मरूप आत्मामे, आकाशमे छिद्रकीतरह अनेकतरहकी बुद्धि मालुम पडै है, अर्थात् आकाशमे चलनीप्रभृति आडी आयवेसूं जैसे न होतेभी छिद्र दीखे है। ऐसेही आत्मामे अन्यथा बुद्धिभी औपाधिक है, और विविधप्रकारकी है, और उन्हीसों जीवको बंधन होय रह्यो है।

कठि० समास—सर्वं ब्रह्म इति वाद ब्रह्मवाद, तेन।१२।

उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने।
गंगातीरस्थितो यद्वद्देवतां तत्र पश्यति।१३।

तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन्ज्ञानी प्रपश्यति ।

अन्वय—यद्वत् गंगातीरस्थितः तत्र देवतां पश्यति, तथा उपाधिनाशे (सति) (च) ब्रह्मात्मत्वावबोधने विज्ञाने (सति) ज्ञानी, स्वस्मिन् परंब्रह्म कृष्णं प्रपश्यति ।

भावार्थ—जैसे गंगाके तीरपै स्थित, और प्रवाहमूर्ति आदि-गंगामे एकभाववारो गंगाको भक्त, प्रवाहरूप गंगामे ही देवता-रूप गगाजीको दर्शन करे है, तेसेही जा जीवकू प्रभु या प्रकारसूं उद्धार करनो चाहे वाकी अविद्यारूप उपाधिके नाश भयेसू और 'सर्ववस्तु ब्रह्मरूप है' एसो यथार्थ ज्ञानरूप अनुभव होयवेसूं ज्ञानीभी अपनी आत्मामे परब्रह्म श्रीकृष्णको दर्शन करै है । क्योंकि आत्मासहित सब जगत् अक्षररूप है और अक्षर तो प्रभुके रहवेको धाम है तासूं ऐसे अक्षर ज्ञानी कूं आत्मामे प्रभुके दर्शन होनो सहज है ।

कठि० समा०—ब्रह्म आत्मा यस्य तत् ब्रह्मात्म, ब्रह्मात्मन भाव ब्रह्मा-त्मत्व, ब्रह्मात्मत्वेन अवबोधनं, तस्मिन् । १३ ।

जो सेवाको दृढ आग्रही न होय और लौकिक इच्छावारो होय वाकू कहा फल होय सो लिखे हैं—

संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा । १४ ।
अपेक्षितजलादीनामभावात्तत्र दुःखभाक् ।

अन्वय—यथा दूरस्थः अपेक्षितजलादीनां अभावात् तत्र दुःखभाक् (भवति), तथा यः संसारी तु (श्रीकृष्णं) भजते, सः (दर्शनाभावात्) दुःखभाक् (भवति) ।

भावार्थ—जैसे गंगासों दूर स्थित मनुष्य, इच्छित जल और दर्शनके न होंय वे सों वहा दुःखी होय है, तैसेही जो अहं-

ताममतामें बंध्यो जीव कृष्णको भी भजन करै, तो वह भगवद्दर्शन न होयवेसो केवल दुःखी होय है ।

कठिनांश समास—जल आदिर्येषा तानि जलादीनि, अपेक्षितानि च तानि जलादीनि च, तेषा । १४ ।

तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः । १५ ।
आत्मानंदसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत् ।

अन्वय—तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थः सर्वलोकतः विमुक्तः (सन) आत्मानंदसमुद्रस्थं कृष्णं एव विचिन्तयेत् ।

भावार्थ—तासों श्रीभगवन्मार्गमे रहवेवारो पुरुष तो अहंताममतारूप संसारसूं अलग रहतो, निज आनंदसमुद्रमें विहार-करते श्रीकृष्णकोही स्मरण करै । अर्थात् लौकिक इच्छानको परित्याग करके केवल प्रभुसेवा करै ।

कठि० समा—आत्मन आनद आत्मानद, स एव समुद्र,, आत्मानदसमुद्र, तस्मिन्, तिष्ठति स, तम् । १५ ।

लौकिक इच्छाराखतो होय किन्तु सेवाको दृढ आग्रही होय वाके फलकू कहे है ।

लोकार्थी चेद्भजेत्कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा । १६ ।
क्लिष्टोऽपि चेद्भजेत्कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा ।

अन्वय—(यः) लोकार्थी (सन्) कृष्णं चेत् भजेत् (तर्हि) (सः) सर्वथा क्लिष्टः भवति, क्लिष्टः अपि (जनः) चेत् कृष्ण भजेत् (तस्य) सर्वथा लोकः नश्यति ।

भावार्थ—जो पुरुष, लौकिककामनानको प्रयोजन राखके जो कदाचित् श्रीकृष्णकी सेवा करै, तो वह सबतरहसूं क्लेश पावै है, और क्लेश सहन करतो भी पुरुष यदि भगवद्भजन करे जाय तो वाको सबतरहसो अहंताममतारूप संसार दूर होय है । १६

ज्ञानाऽभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत्पूजोत्सवादिषु । १७ ।
मर्यादास्थस्तु गंगायां श्रीभागवततत्परः ।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः । १८ ।

अन्वय—पुष्टिमार्गी ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) पूजोत्सवादिषु तिष्ठेत्, मर्यादास्थः तु ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) गङ्गाया तिष्ठेत्, पुष्टिमार्गे अनुग्रहः नियामकः इति स्थितिः (अस्ति)।

भावार्थ—पुष्टिमार्गीय भक्त, ज्ञानके अभावमे अर्थात् अपने स्वरूप और भगवत्स्वरूपको ज्ञान न होय तो, श्रीभागवतमे तत्पर रहतो, एकादशस्कंधमे कही पूजाकी रीति और पर्वनमे अनेक उत्सव जहा होते होंय वहा रहै । और मर्यादामार्गीय भक्त तो ज्ञानके अभावमे श्रीभागवतमे तत्पर रहतो श्रीगंगा तटपै रहै । अनुग्रह-मार्गमे भगवानको अनुग्रहही स्थान आदिको नियमकरवेवारो है यह भगवन्मार्गकी मर्यादा है, अर्थात् शुद्धसेवायुक्त मन्दिर आदिद्वारा जहां भगवान् अनुग्रह करते होंय वहा पुष्टिमार्गीय भक्त श्रीभागवतश्रवणवाचनतत्पर होयके रहै ।

कठि० समा०—मृग्यते अनेन इति मार्ग पुष्टिरेव मार्ग पुष्टिमार्ग, तस्मिन्। पूजाश्च उत्सवाश्च पूजोत्सवा पूजोत्सवा आदियैषा ते, तेषु। श्रीमच्च तद्भागवत च श्रीभागवात, तस्मिन् तत्पर श्रीभागवततत्पर । १८ ।

उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति ।
ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मान्निरूपितः । १९ ।

अन्वय—उभयोः तु क्रमेण एव पूर्वोक्ता एव फलिष्यति, (यतः) भक्तिमार्ग. ज्ञानाधिकः (अस्ति) तस्मात् एवं निरूपित.।

भावार्थ—मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय भक्तनकूं क्रमसू ही पूर्वमें कही मानसी सेवाही प्राप्त होयगी, भेद इतनोही है के मर्यादामार्गीयकूं अनुग्रहमार्गमे आयवेसूं प्राप्त होयगी, क्योंकि 'क्लेशोधिकतरस्तेषा' इत्यादि वचननसो यह सिद्ध है, और अतएव भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसूं अधिक है, तासूं ही ऐसो निरूपण कियो है।

कठि० समास—ज्ञानात् अधिक ज्ञानाधिक । १९ ।

भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः ।
अन्यथाभावमापन्नस्तस्मात्स्थानाच्च नश्यति । २० ।

अन्वय—यथा तीरस्थ भक्त्यभावे तु दुष्टैः स्वकर्मभिः अन्यथाभावं आपन्नाः (सन्) तस्मात् स्थानात् नश्यति, (तथा, भक्तोऽपि नश्यतीत्यर्थः) ।

भावार्थ—जैसे गंगातीरपै रहतो पुरुष, भक्ति न होय तो अपने दुष्टकर्मनसूं पाखडीपनेकूं प्राप्त होयके और तीर्थज्ञानरूप स्थानसूंभी नष्ट होय जाय है, तैसे भक्तभी भक्तीके अभावमे अपने दुष्कर्मनसूं वा स्थानसूं भ्रष्ट होय नीच योनीनमे जन्म ले है। भक्तेः आभावः भक्त्यभाव. । २० ।

एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितत् ।
एतद्बुध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात् । २१ ।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता सिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्णा ।

अन्वय—एवं मया गुप्तं स्वशास्त्रसर्वस्वं निरूपितं एतन् बुध्वा पुरुषः सर्वसंशयात् विमुच्येत ।

भावार्थ—या रीतिसों मैने अपने शास्त्रको गोप्य सेवारूप सिद्धान्त कह्यो, याकूं जानके पुरुष सर्वसन्देहनसूं मुक्त होय है। २१।

ऐसें श्रीसिद्धान्तमुक्तावलीकी व्रजभाषाटीका सम्पूर्ण भई ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें.

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदकी विवृति ।

पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक् ।
जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च । १ ।
वक्ष्यामि सर्वसंदेहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः ।

अन्वय—पृथक् पृथक् विशेषेण, जीवदेहक्रियाभेदैः, प्रवाहेण, च फलेन पुष्टिप्रवाहमर्यादाः (अहं) वक्ष्यामि, यच्छ्रुतेः सर्वसंदेहा न भविष्यन्ति ।

भावार्थ—पुष्टि प्रवाह और मर्यादा इन तीननके जुदे २ विशेष (धर्म) नसूं, सृष्टिकी चलती परंपरासूं, जुदे २ मिलते फलसूं और जीव देह क्रिया इनके भेदनसूं पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्गको निरूपण (मे) करूं गों, जाके श्रवणकरेसूं सबतरहके संदेह दूर होयगे ।

कठि० समा०—पुष्टिश्च प्रवाहश्च मर्यादा च पुष्टिप्रवाहमर्यादा, ता । जीवश्च देहश्च क्रियाश्च जीवदेहक्रिया, तासा भेदा, तै । यासा श्रुति यच्छ्रुति, तस्या । १ ।

भक्तिमार्गस्य कथनात्पुष्टिरस्तीति निश्चयः । २ ।

अन्वय—भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः (अस्ति) ।

भावार्थ—शास्त्रनमे 'नायमात्मा' 'केवलेन हि भावेन'

इत्यादिवचननसूं भक्तिमार्ग जुदोही कह्योहे तासूं निश्चय होय है के भगवान्‌को अनुग्रह है, और ताहीसू यहभी मालुम पडैहे के पुष्टि (अनुग्रह) मार्गभी जुदोही है माहात्म्याज्ञानक भूलगई और बोली किं 'मे आपके लिये कंससू भी डरपूहूं' यह सुहास स्नेहको लक्षण है, ये स्नेह अनुग्रह बिना नही मिले है तासूं भी मालुमपडे है के पुष्टिमार्ग जुदो ही है। पंचमस्कंधमे कह्योहै जो 'प्रभु अपने भजवे वारेनकूं मुक्ति देदे हे पर भक्ति नही देहे' तासूं भी मालुम पडे है कि जो जाके ऊपर अति अनुग्रह होय वाहीकूं भक्ति देहे। और देवकीजीने जब स्तुति करी तब माहात्म्यकी स्फुर्तिही किन्तु थोडी देरमेही। २।

'द्वौ भूतसर्गा'वित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः।
वेदस्य विद्यमानत्वान्मर्यादापि व्यवस्थिता। ३।

अन्वय—'द्वौ भूतसर्गौ' इत्युक्तेः प्रवाहः अपि व्यवस्थितः (अस्ति) (किंच), वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादा अपि व्यवस्थिता (अस्ति)।

भावार्थ—गीताजीमे श्रीकृष्णने अर्जुनसूं कही है के 'या लोकमें दैव और आसुरभेदसों प्राणीनकी दोतरहकी सृष्टि है' तासू प्रवाहमार्गभी सिद्ध है, और कर्मादिकी व्यवस्था करेववारो वेद विद्यान है, तासूं सिद्ध है के मर्यादामार्गभी अनादिकालसूं चलो आवे है। ३।

कश्चिदेव हि भक्तो हि 'यो मद्भक्त' इतीरणात्।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः। ४।

न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदतः ।
'यदा यस्येति' वचनान्नाहं वेदैरितीरणात् । ५ ।

अन्वय—'यो मद्भक्त' इति ईरणात् (किच) सर्वत्र उत्कर्षकथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः, हि कश्चित् एव भक्तः, सर्वः न, अतः प्रवाहात् हि (पुष्टिमार्गः) भिन्नः (अस्ति) च **'यदा यस्येति'** वचनात् **'नाहं वेदैः'** इति ईरणात् वेदतः (अपि) भेदतः (स्थित इति शेषः) ।

भावार्थ—गीताजीमें भागवानने **'जो मेरो भक्त हे सो मोकूं प्रिय है'** यह कह्यो है तासूं, और सर्वशास्त्रनमे भक्तिको उत्कर्ष कह्यो हे तासूं, पुष्टिमार्ग है यह सिद्ध होय है, कारण के कोईक ही भक्त होय है, सब नहीं होय है, तासूंभी पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्गसूं भिन्न है यह निश्चय है, । तथा **'जब भगवान् अनुग्रह करें हैं तब भक्त, लोकमार्ग और वेदमार्गमें बुद्धि नहीं लगावे है'** या भागवतके वचनसूं तथा **मेरो ऐसो दर्शन वेदादिसों नहीं होय है'** या भगवान्के वचनसूंभी यह निश्चय होय है के पुष्टिमार्ग, मर्यादामार्गसोंभी भिन्नतया स्थित है, अर्थात् भिन्न है ।

कठि० समास—उत्कर्षस्य कथनं उत्कर्षकथन, तस्मात्, भेद आश्रित्य स्थित इति भेदात् । ४-५ ।

। कोईके पूर्वपक्षको उत्तर कहे है ।

मार्गैकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ ।
न तद्युक्तं सूत्रतो हि भिन्नौ युक्त्या हि वैदिकः । ६ ।

अन्वय—मार्गैकत्वे अन्त्यौ अपि तनू (च) भक्त्यागमौ मतौ

इति चेत्, तत् युक्त न, हि सूत्रतः युक्त्या वैदिकः (मार्गः) हि भिन्नः (अस्ति) ।

भावार्थ—तीनोनकूं एकही मार्ग मानो अर्थात् प्रवाह और मर्यादामार्ग दोनो भक्तिमार्गके अग है, तथा भक्तिके साधन शास्त्र हैं, एसे कहो तो भी युक्त नहीं, कारणके मुख्यको फलही जामे फल मानो जाय, ताकूं अग कहे है, परन्तु यहां मर्यादाको फल **'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्'** या सूत्रसूं अक्षरैक्य कह्यो है, और भक्तिको फल **'तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्'** या शाडिल्यसूत्रसू आनदप्राप्ति कही है, तासू फल जुदे २ होंयवेसूं दोनो मार्ग जुदे हैं, और प्रवाहको तो संसार फल है तासूं वहभी भक्तिमार्गको अग नही होय सकै है ।

कठि० समास—एकस्य भाव एकत्व मार्गाणा एकत्व मार्गैकत्वम् । ६ ।

जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यताश्रुतेः ।
यथा तद्वत्पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः । ७ ।
प्रमाणभेदाद्भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः ।

अन्वय—यथा पुष्टिमार्गे श्रुतेः जीवदेहकृतीनां भिन्नत्वं, तद्वत् नित्यता च (सिद्ध्यति) हि द्वयोः अपि निषेधतः, (किंच) प्रमाणभेदात् पुष्टिमार्गः भिन्नः निरूपितः ।

भावार्थ—जैसे पुष्टिमार्गमे श्रुतिके प्रमाणसूं पुष्टिमार्गीय जीव देह और उनकी क्रिया जुदी हैं, तैसे उनकी नित्यताभी **'ध्रुवा सोऽस्य कीरयः'** श्रुतिसों मानी है, याही कारणसूं **'स जाहति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठितां'** इत्यादि प्रमाणनसूं प्र-

वाह और मर्यादा दोनों मार्गनमे पुष्टिफल (भगवत्प्राप्ति) के मिलवेको निषेध कियो हे तासूं, और प्रवाहमर्यादामार्गनकूं प्रतिपादनकरनवारे शास्त्रनके भेदसूंभी पुष्टिमार्ग, दोनोंनसूं भिन्नही कह्यो गयो है।

कठि० समा—जीवाश्च देहाश्च कृतयश्च जीवदेहकृतय, तासाम्। ७।

सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतम्। ८।

इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान्हरिः।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः। ९।

अन्वय—स्वरूपांगक्रियायुतं सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि, हरिः इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान्, वचसा, वेदमार्गं हि (सृष्टवान्) कायेन पुष्टिं **(सृष्टवान्)** (इति) निश्चयः (अस्ति)।

भावार्थ—जीवदेह और क्रियानसहित तीनों मार्गनके सृष्टिभेदकूं कहूं हूं, **'बहुस्यां प्रजायेय' 'न तत्र रथाः' 'विद्धि मायामनोमयं'** आदि श्रुतिनसूं मालुम पडै है के श्रीहरिने इच्छाद्वारा मनसूं प्रवाहमार्गकी सृष्टि करी, और **'स भूरिति व्याहरन्भूमिमसृजत' 'वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे'** आदि वचननसूं ज्ञात होय है के वाणीसूं मर्यादामार्ग पैदा कियो तथा **'द्वेधाऽपातयत्' 'स नैव रेमे' 'स हैतावानास'** आदि वचननसूं जान्यो जाय है के स्वरूपसूं पुष्टिमार्गकी सृष्टि निजरमणके लिये करी है, ऐसो निश्चय है।

कठि० समास—स्वरूपं च अगं च क्रियाश्च स्वरूपागक्रिया., ताभिर्युत, तम्। ८–९।

मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च ।
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकता । १० ।

अन्वय—लोके मूलेच्छातः फलं (भवति), च वैदिके अपि वेदोक्तं (फलं) तु पुष्टौ कायेन फल, (एवं) भिन्नेच्छातः अपि एकता न ।

भावार्थ—'शुक्लकृष्णे गती ह्येते' इत्यादि वचननसों मालुम पडे है, के प्रवाहमार्गमे 'सृष्टि हमेशा चलती रहै' या इच्छासों लौकिक फल मिले है, और मर्यादामार्गमे अक्षरमे मिलजानो यह वेदोक्त फल मिले है, किन्तु 'नायं सुखापो' आदि वाक्यनसूं पुष्टिमार्गमे निजस्वरूपसूं फल मिले है, तासूं फलदेयवेकी अलग २ इच्छा होयवेसूंभी पुष्टि और अन्य मार्गनको ऐक्य नही है ।१०।

'तानहं द्विषतो' वाक्याद्भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः ।
अत एवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशतः । ११ ।

अन्वय—'तानहं द्विषतो' वाक्यात् प्रवाहिणः जीवाः भिन्नाः (सन्ति), अत एव भिन्नौ इतरौ, मोक्षप्रवेशतः सान्तौ (स्तः) ।

भावार्थ—'मैं जगत्रूप ब्रह्मसूं द्वेषकरनवारे उन आसुर जीवनकूं वारंवार आसुरयोनिनमेंही डारूं हूं' या श्रीकृष्णके वाक्यसूं प्रवाहमार्गीय जीव भिन्न है ऐसो निश्चय होय है, ताहीसूं प्रवाहीनसूं जुदे मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय जीव, अक्षरैक्य और हरिप्राप्तिके होयवेसूं अंतवारे है, अर्थात् इन दोनोनको जीवभाव मिट जाय है, और प्रवाहीनकूं सदा संसारचक्रमेही रहनो पडे है ।

कठि० समास—मोक्षश्च प्रवेशश्च मोक्षप्रवेशौ, मोक्षप्रवेशाभ्या इति मोक्षप्रवेशत । अन्तेन सहितौ सान्तौ । ११ ।

तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः ।
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् । १२ ।

अन्वय—कस्मात् पुष्टिमार्गे जीवाः भिन्ना एव संशयः न (अस्ति), तत्सृष्टिः भगवद्रूपसेवार्थ (अस्ति), अन्यथा न भवेत् ।

भावार्थ—पूर्वमे तीनोंमार्ग जुदे २ कहे हैं तासूं पुष्टिमार्गमे जीव दोनों मार्गनके जीवनसूं जुदेही हैं, यामे अणुमात्रभी सन्देह नहीं है, उन पुष्टिमार्गीयजीवनकी सृष्टि भगवान्‌की स्वरूपसेवाके लिये है, अन्यके लिये उनकी सृष्टि होय यह संभव नहीं है ।

कठि० समास—भगवत रूप भगवद्रूप, तस्य सेवा भगवद्रूपसेवा, तस्यै इति भगवद्रूपसेवार्थम् । १२ ।

स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा । १३ ।
तथापि यावता कार्यं तावत्तस्य करोति हि ।

अन्वय—स्वरूपेण अवतारेण लिगेन च गुणेन च (पुष्टि-जीवानां) स्वरूपे वा देहे वा तत्क्रियासु तारतम्यं न (अस्ति), तथापि यावता कार्य तावत् तस्य करोति हि ।

भावार्थ—सच्चिदानन्दस्वरूपकरके, अवतारकरके, ध्वज वज्र आदि चिह्नकरके, और ऐश्वर्यादि गुणनकरकेभी पुष्टिजीवनके स्वरूपमे देहमे अथवा उनकी क्रियामे भगवान्‌की अपेक्षा यद्यपि भेद नहीं है, तथापि जितने भेदसूं रमणरूप कार्य सिद्ध होय उतनो तो फरक, आपमे और भक्तनमे भगवान् राखे हैं, यह बात निश्चय है ।

कठिनांशको समास—तेषा क्रिया तत्क्रिया, तासु। तरतमस्य भाव तारतम्यम्। १३।

ते हि द्विधा शुद्धमिश्रभेदान्मिश्रास्त्रिधा पुनः । १४ ।
प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये ।
पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः । १५ ।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाऽतिदुर्लभाः ।

अन्वय—ते हि शुद्धमिश्रभेदात् द्विधा, पुनः भगवात्कार्यसिद्धये मिश्राः प्रवाहादिविभेदेन त्रिधा (सन्ति), पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः (भवन्ति), प्रवाहेण विमिश्राः क्रियारताः (भवन्ति) मर्यादया (विमिश्राः) गुणज्ञाः (भवन्ति) (किच) प्रेम्णा शुद्धाः ते अतिदुर्लभाः (भवन्ति)।

भावार्थ—वे पुष्टिमार्गीय जीव शुद्ध और मिश्र भेदसों दो प्रकारके हैं, फिर उनमेभी भगवानके रमणरूपकार्यकी सिद्धिके लिये मिश्रजीव, प्रवाहादि तीनभेदकरके तीनप्रकारके हैं, अर्थात् प्रवाहमिश्र मर्यादामिश्र और पुष्टिमिश्र ऐसे तीन प्रकारके है, जो पुष्टिजीव थोडे अनुग्रहसूं और मिश्र होय है, अर्थात् मिले हे वे सर्वज्ञ होंय है, जो प्रवाहसूं मिश्र होंय है वे कर्ममे प्रीतिवारे होंय हैं, वे जो मर्यादासूं मिश्र होंय है वे भगवद्गुणादिके जानवेवारे होंय हैं, और जो पुष्टिजीव प्रेमसूं शुद्ध होंय हैं वे तो अतिदुर्लभ हैं, इन्हीं चारभेदनकूं ग्रन्थान्तरमें पुष्टिपुष्टभक्त प्रवाहपुष्टभक्त मर्यादापुष्टभक्त और शुद्धपुष्टभक्त कहे है। या रीतिसूं मिश्रभक्तिवारे भक्त एकको दूसरेमे सांकर्य होयवेसूं नो ९ प्रकारकेभी और अनेक प्रकारकेभी होय सके हैं श्रीकल्याणरायजीने मध्यम

नौ भेद यो बताये हैं प्रथम अनुग्रहयुक्त जो जीव है उनपै प्रभुको और अनुग्रह होय तो वे प्रभुके अभिप्रायातक जानवेवारे होय जांय है। वे पुष्टिपुष्टभक्त कहावे है। और जिन पुष्टिजीवनको मर्यादामें फिर अङ्गीकार होय वे भगद्धर्मनके जानवेवारे होयं। उन्हे मर्यादापुष्ट कहे है। और जो पुष्टजीव प्रवाहमिश्र होंय वे पूजा आदिमे रत होंय। वे प्रवाहपुष्ट कहे जांय है। अब प्रवाही जीव यदि पुष्टिमिश्रित होंय तो वे भगवत्तीर्थप्रिय होय है। जो प्रवाही जीव मर्यादामिश्रित होय वे काम्य कर्म करवेवारे होंय। और जो प्रवाही फिर प्रवाहमिश्र होंय वे केवल लौकिक कर्म करवेवारे होंय है। येही आसुरी जीव है। अब मर्यादामार्गीय यदि फिर अनुग्रहयुक्त होंय तो वे हरिमाहात्म्यककूं जानके भगवत्प्रीतिके लिये कर्म करे है। और जो मर्यादामार्गी मर्यादामिश्रित होंय वे स्वर्गार्थ कर्म करें। और जो मर्यादामार्गी प्रवाहमिश्र होंय वे लौकिक फलके लिये कर्म करे।

कठिनांशको समास—शुद्धाश्च मिश्राश्च शुद्धमिश्रा, तेषा भेद तस्मात्। प्रवाह आदि येषा ते प्रवाहादय, तेषा विभेद, तेन। १४-१५।

एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र निरूप्यते। १६।
भगवानेव हि फलं स यथाऽऽविर्भवेद्भुवि।
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्। १७।

अन्वय—एवं तेषां सर्गः तु (निरूपितं), अत्र फलं तु निरूप्यते, हि भगवान् एव फलं, स भुवि गुणस्वरूपभेदेन यथा आविर्भवेत्, तथा तेषा फलं भवेत्।

भावार्थ—या प्रकारसूं उन पुष्टिजीवनकी उत्पत्ति तो कही, अब यहां उनके फलकोभी निरूपण करे है, निश्चयकरके भगवान् ही फल हैं, वे श्रीकृष्ण, भक्तके हृदयमे अथवा वृन्दावनादिस्थलमे ऐश्वर्यादि गुण और नृसिहवामनादिस्वरूपके भेदसूं जा रीतिकरके प्रगट होंयँ, ताहीरीतिसों उनके फल होंय हैं ।

कठि० समास—गुणाश्च स्वरूपाणि च गुणस्वरूपाणि, तेषा भेद, तेन । १६–१७ ।

आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित् ।
अहंकारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि । १८ ।

अन्वय—आसक्तौ अथवा अहंकारे, लोके तन्मार्गस्थापनाय क्वचित् भगवान् एव शापं दापयति ।

भावार्थ—नलकूवरादिकी तरह यदि लौकिकमे आसक्ति होय अथवा चित्रकेतुप्रभृतिकीतरह जो अहंकार होय तो अपने भक्तनकू अपने २ पुष्टिमर्यादाआदिमार्गनमे राखवेके लिये कोईसमय भगवान्ही कोईकेद्वारा उन्हे शाप दिवावे है ।

कठि० समास—तेषा मार्गा तन्मार्गा, तेषु स्थापनं तन्मार्गस्थापनं तस्मै । १८ ।

न ते पाषण्डतां यान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः ।
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे । १९ ।

अन्वय—ते पाषण्डतां न यान्ति, च (तेषां) रोगाद्युपद्रवाः न (भवन्ति), प्रायेण (ते) महानुभावाः (भवन्ति), (तेषां) शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे (भवति) ।

भावार्थ—जिनकों भगवान् शाप दिवावे है वे भक्त, फिर

लोकवेदभक्तिमार्गसूं विरुद्ध नहीं होंय है, तथा उनके रोगादि उपद्रवभी नहीं होंय हैं, बहोतकरके वे महानुभाव होंय जाँय हैं, उनकूं जो भगवान् शापरूप शिक्षा दे है सो केवल उनको मिश्र-भाव मिटायके शुद्धप्रेमी करवेकेलियेही समझनों ।

कठि० समास—शुद्धस्य भाव शुद्धत्व, शुद्धत्वे हेतु शुद्धत्वहेतु', तस्मै । १९ ।

भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि ।

अन्वय—भगवत्तारतम्येन (ते) हि तारतम्यं भजन्ति ।

भावार्थ—**'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं'** या श्रुतिसों मालुम पडै है के भगवान् अनेकरूपवारेभी है तासों भगवान् जेसे जेसे स्वरूपभेदको स्वीकार करे हैं, उनके भक्तभी वैसे २ भावके तारतम्यकों ग्रहण करे है, याहीसों वृत्रासुरको भाव संकर्षणमे भयो और गजेन्द्रको (इन्द्रद्युम्नको) निर्गुण परब्रह्ममे भाव भयो ।

वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्यात्तेषु नान्यथा । २० ।
वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः ।

अन्वय—तेषु वैदिकत्वं (च) लौकिकत्वं कापट्यात् (अस्ति) अन्यथा न (अस्ति) हि वैष्णवत्वं सहजं, अन्यत्र ततः विपर्ययः (अस्ति) ।

भावार्थ—**' कुर्याद्विद्वाँस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्'** इत्यादि वाक्यनके अनुसार उन भक्तनमे वैदिक कर्मनको अनुष्ठान करनो, तथा लौकिकव्यवहार चलानो, यह दोनो बात कपटसे अर्थात् लोकसंग्रहके लिये होंय है, कारणके उनमें स्वभावसोंही भगवद्भक्तपनो होय है, परन्तु मर्यादा जीव और

लौकिक जीवनमे, यासूं विरुद्ध अर्थात् वैष्णवपनो कपटसों और वैदिकपनो स्वभावसूं तथा वैष्णवपनो कपटसूं और व्यवहारासक्ति स्वभावसों होय है। २०।

संबंधिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे। २१।
चर्षणीशब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु।
क्षणात्सर्वत्वमायांति रुचिस्तेषां न कुत्रचित्। २२।
तेषां क्रियाऽनुसारेण सर्वत्र शकलं फलम्।

अन्वय—ये संबंधिनः जीवाः तथा (ये) प्रवाहस्थाः अपरे (जीवाः) ते तु सर्वे चर्षणीशब्दवाच्याः, ते सर्वे सर्ववर्त्मसु क्षणात् सर्वत्वं आयान्ति, तेषा रुचिः कुत्रचित् न (भवति), सर्वत्र तेषां क्रियाऽनुसारेण शकलं फलं (भवति)।

भावार्थ—जो तीनो मार्गनसूं संबंध राखवेवारे जीव है वे, और जो केवल प्रवाहमार्गमें आसक्तिवारे अन्य जीव हैं वे सब तौ, चर्षणी (भ्रान्त) शब्दसूं कहवे लायक है, वे सर्व सबमार्गनमे क्षणमात्रमे सबमार्गनकेसे होय जाय है, किन्तु उनकी रुचि कोईभी मार्गमें दृढ नही होय है, सबमार्गनमे उन्हे, उनके कर्मनके लायक खंड २ फल मिलै है।

कठि० समास—सबंध अस्ति येषा ते। प्रवाहे तिष्ठन्ति ते। वक्तुं योग्या वाच्या चर्षणीशब्देन वाच्या, चर्षणीशब्दवाच्याः। सर्वाणि च तानि वर्त्मानि च सर्ववर्त्मानि, तेषु। २१–२२।

प्रवाहस्थान्प्रवक्ष्यापि स्वरूपांगक्रियायुतान्। २३।
जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे 'प्रवृत्तिं चेति' वर्णिताः।
ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः। २४।

अन्वय—स्वरूपांगक्रियायुतान् प्रवाहस्थान् (अहं) प्रवक्ष्यामि, **'प्रवृत्तिं च'** इति वर्णिताः ते सर्वे जीवा हि आसुराः (सन्ति), च अज्ञदुर्ज्ञविभेदतः द्विधा हि प्रकीर्त्यन्ते ।

भावार्थ—स्वरूप देह क्रियासूं युक्त प्रवाहमार्गीय जीवनकूं मे कहूगो, **'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा'** इत्यादि श्लोकनसों गीताजीमे जिनको वर्णन भगवान्ने कियो है वे सब आसुर (प्रवाही) जीव है, और वे जीव अज्ञ और दुर्ज्ञ इन दो भेदनसों दो प्रकारके कहे है यह निश्चय है ।

कठि० समास—अज्ञाश्च दुर्ज्ञाश्च अज्ञदुर्ज्ञा, अज्ञदुर्ज्ञाना विभेद:, तस्मात् । २३-२४ ।

दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः ।
प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते । २५ ।
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचित पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद सम्पूर्ण ।

अन्वय—(ये) भगवत्प्रोक्ताः ते हि दुर्ज्ञाः, ये पुनः तान् अनु, ते अज्ञाः, पुष्टिस्थः प्रवाहे समागत्य अपि तैः (सह) न युज्यते, सः अपि तैः (न युज्यते), यतः कर्मणा तत्कुले जातः (अस्ति) ।

भावार्थ—जो गीतामे भगवान्ने कहे है वे जीव दुर्ज्ञ (दुष्ट-ज्ञानवारे) है, और जो उन आसुरनको अनुकरण करे है वे अज्ञ कहे जाँय हैं, यद्यपि अज्ञ आसुरजीव, आसुर नहीं है, तथापि तत्कुलमे प्रसूति होयवेसूं अथवा उनको अनुकरणकरवेसूं वे आसुर कहे जाँय है, इन जीवनकी मुक्ति, केतो सत्संगादिसों

भक्तिद्वारा होय है, अथवा तो संरम्भ भय द्वेष आदि असाधनसाधनद्वारा भगवदनुग्रहसों होय है, यह बात **'मन्येऽसुरान्भागवतॉस्त्र्यधीशे'** आदि वचननसों मालुम पडे है, पुष्टिजीव प्रवाहमार्गमे आयकेभी उनके साथ मिले नहीं है, और मर्यादामार्गीयभी आसुरकुलमे आयके उनके धर्मनसूं मिले नहीं है, कारणके कर्मसों उनके कुलमे जन्म भयो है, सोही श्रीगीताजीमे कही है के **'पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते'** ।

क० समा०—न जानन्ति ते-अज्ञा । दुष्ट ज्ञानं येषा ते दुर्ज्ञा । २५ ।

इति श्रीपुष्टिप्रवाहमर्यादाव्रजभाषा सम्पूर्णा

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

सिद्धान्तरहस्यकी टीका।

श्रावणस्याऽमले पक्ष एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते। १।

अन्वय—श्रावणस्य अमले पक्षे एकादश्यां महानिशि भगवता साक्षात् (यत्) प्रोक्तं तद् अक्षरशः उच्यते।

भावार्थ—सावनके शुक्लपक्षमे और एकादशीकी अर्धरात्रिमे श्रीपुरुषोत्तमभगवान्ने जो प्रत्यक्ष कह्यो सो अक्षर २ मे कहूं हूं। १।

ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधा स्मृताः। २।

अन्वय—ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषा देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिः हि (भवति), दोषाः पंचविधाः स्मृताः।

भावार्थ—आत्मासहित निज सर्व पदार्थनको भगवानकूं निवेदन करवेसूं सब जीवनके देह और लिगशरीरयुक्त जीव संबंधी सब दोषनकी निवृत्ति होय है, अर्थात् वे स्वरूपसूं रहेभी है तोभी सेवामे प्रतिबध नहीं करे है, वे दोष, पाच प्रकारके है। जैसे—

कठि० समास—ब्रह्मणा सह सबंध ब्रह्मसबध, तस्य करण तस्मात्। पंचविधा ये॰ ा ते। २।

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मंतव्याः कथंचन । ३ ।

अन्वय—लोकवेदनिरूपिताः सहजाः देशकालोत्थाः संयोगजाः च स्पर्शजाः कथंचन (हरिसेवायां प्रतिबन्धकाः) न मन्तव्याः ।

भावार्थ—लोक और वेदमे कहे, अहंताममतादिरूप सहज, अंगवंगादि दुर्देशमे जन्मादि भयेसों देशोत्थ, कलियुगदुर्मुहूर्तादिमें जन्म होयवेसों कालोत्थ, मनके संयोगसों भये मानसिक दुष्क्रियारूप संयोगज, तथा स्पर्शजदोष, निवेदनके अनंतर सेवामें प्रतिबंधक कभी न मानने चहिये ।

कठिनांश समास—सह जाता सहजा । देशकालाभ्या उत्था देशकालोत्था । ३ ।

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन ।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत् । ४ ।

अन्वय—अन्यथा सर्वदोषाणां निवृत्तिः कथंचन न (भवति), तस्मात् असमर्पितवस्तूनां वर्जनं आचरेत् ।

भावार्थ—भगवन्निवेदन किये विना पूर्वोक्त दोषनकी निवृत्ति कोई तरहसूंभी नहीं होय है, तासूं दोषनिवृति होयवेके लिये भगवानके अनिवेदित पदार्थनकूं अपने उपयोगमे न ले ।

कठि० समास—असमार्पितानि च तानि वस्तूनि च असमर्पितवस्तूनि तेषाम् । ४ ।

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः ।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणम् । ५ ।
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ।

अन्वय—(भक्तः) समर्प्य एव निवेदिभिः (पदार्थैः) सर्वं कुर्यात् इति स्थितिः (अस्ति), देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणं न मतं । तस्मात् सर्वकार्ये आदौ सर्ववस्तुसमर्पणं (कर्तव्यं) ।

भावार्थ—तासों भगवद्भक्त समर्पण करकें और निवेदित पदार्थनसूंही सब कार्य करै यह पुष्टिमार्गकी मर्यादा है, देवदेव श्रीभगवान्कूं अर्धभुक्त समर्पण समत नही है, तासूं सर्वकार्यकी आदिमे समग्रवस्तुकोही श्रीहरिकूं अर्पण करै (अर्द्धभुक्तको नहीं),

कठि० समास—निवेदन निवेद, निवेद, अस्ति येषा ते निवेदिन- तै । सामि भुक्त सामिभुक्तम् । सर्वं च तत् कार्यं च सर्वकार्यं, तस्मिन् । ५ ।

दत्ताऽपहारवचनं तथा च सकलं हरेः । ६ ।
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ।

अन्वय—तथा च हरेः सकलं न ग्राह्यं इति दत्तापहारवचनं (तत्) वाक्यं भिन्नमार्गपर मतम् ।

भावार्थ—और तैसेही भगवानकी निवेदितवस्तु अपने उप- योगमे न लानी इत्यादि जो 'अपि दीपावलोक मे नोपयुंज्यान्निवे- दितं' एकादशके वाक्य हैं वे वाक्य भक्तिमार्गसों जुदे मार्गके लिये है ।

कठि० समास—दत्तस्य अपहार दत्तापहार दत्तापहार न कार्य इति वचन दत्तापहारवचन । ६ ।

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति । ७ ।
तथा कार्यं समार्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ।
गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना । ८ ।
गंगात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं सिद्धान्तरहस्य सम्पूर्णम् ।

अन्वय—यथा लोके सेवकानां व्यवहारः प्रसिद्ध्यति, तथा समर्प्य एव सर्वं कार्यं ततः सर्वेषां ब्रह्मता स्यात्। सर्वदोषाणा गंगात्वं, च गुणदोषादिवर्णना गंगात्वेन एव निरूप्या स्यात्, हि तद्वत् अत्र अपि।

भावार्थ—जैसे लोकमे 'सब कार्य स्वामीको निवेदनकरकेहीं करने' ये सेवकनको व्यवहार प्रसिद्ध है, तैसेही हरिभक्तनकोंभी लौकिक वैदिक सर्व कार्य श्रीहरिकों निवेदन करकेही करने, ऐसे करवेसो कितनेक कालमे सबनकों निर्दोषपनो और समभाव प्राप्त होय है, जैसे अन्यत्र बहते जलके, मलिनता अपवित्रता आदि दोषनकों गंगामे मिलवेसो गगापनो प्राप्त होय है और उनकी गुणदोषआदिकी कथा, जैसे गंगारूपसों वर्णन करी जाय है, ऐसेहीं आत्मनिवेदनरूप शरणागतिके अनन्तर जीवके गुणदोषादि, ब्रह्ममे मिलवेसों ब्रह्मरूप होय जाँय है।

कठि० समास—गुणदोषा आदि येषा तानि गुणदोषादीनि, तेषा वर्णना गुणदोषादिवर्णना। ७–८।

। इति श्रीसिद्धान्तरहस्यव्रजभाषा सम्पूर्णा।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

नवरत्नकी टीका ।

चिन्ता काऽपि न कार्या निवेदितात्मभिः कदाऽपीति ।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम् १ ।

अन्वय—निवेदितात्मभिः कदा अपि का अपि चिन्ता न कार्या, च भगवान् अपि पुष्टिस्थः इति लौकिकीं गतिं न करिष्यति ।

भावार्थ—जिनने आत्मासहित सर्व अत्मीयवस्तूनको भगवानकूं अर्पण कियो है, उन्हे कभीभी कोईतरहकीभी चिन्ता न करनी चहिये, क्योके भगवान्भी अनुग्रहमे स्थिर हैं, तासो अन्य प्रवाहादि लोककीसी गति नही करेगे ।

निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः ।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति । २ ।

अन्वय—तादृशै जनैः निवेदनं तु सर्वथा स्मर्तव्यं, सर्वेश्वरः च सर्वात्मा (भगवान्) निजेच्छातः करिष्यति ।

भावार्थ—उत्तम सेवातत्पर भक्तनके संग निवेदनको स्मरण तो अवश्य करनो, सर्वेश्वर और सबनके आत्मारूप भगवान् , अपनी इच्छासों अथवा अपने स्वीकृत भक्तनकी इच्छासों अपने भक्तनके लौकिक वैदिक सब कार्यनको सिद्ध करेगे । यहा निवेदनमन्त्रको न कहके जो 'निवेदनको' इतनो मात्र कह्यो हे तासू मालुम पडे है के निवेदनके अर्थांशको विचार तथा स्मरण करते

रहनो येही श्रीआचार्यनको तात्पर्य है। जप तो गौण है। श्रीआचार्यवर्गनकूं' तो जप और स्मरण दोनो मुख्य है क्योकि उनकूं तो शिष्यनकूं मन्त्रभी देनो पडे है किन्तु वेष्णवनकूं स्मरण मात्र करन्ते। यदि मन्त्रजपकोही आग्रह हो तो 'स्मर्तव्यं' 'निवेदनं' 'तादृशैः' आदि पद व्यर्थसे हो जांय है। जपमे तादृशनके संग रहवेकी कछु आवश्यकता नहीं है। जप तो एकाकीभी करसके है। और स्मरण तथा विचार तो विना-भगवदीयनके नही होय सके है।

कठि० समास—निजा चासौ इच्छा च निजेच्छा, तस्या, अथवा निजाना इच्छा निजेच्छा, तस्या। २।

सर्वेषां प्रभुसंबंधो न प्रत्येकमिति स्थितिः।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्। ३।

अन्वय—सर्वेषा प्रभुसंबंधः, प्रत्येकं न इति स्थितिः, अतः अन्यविनियोगे अपि का चिन्ता, चेत् स्वस्य सः अपि (का—चिन्ता)।

भावार्थ—आत्मासहित आत्मीय समग्र पदार्थनकूं श्रीहरिको संबंध समानही है अलग २ नहीं है, तासूं आत्मीयवस्तुनको अपने, और अपनो आत्मीयवस्तूनमे, विनियोग होय तोभी कहा चिन्ता करनी अर्थात् कोई तरहकी चिन्ता नहीं है। ३।

अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम्।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना। ४।

अन्वय—कृष्णसात्कृतप्राणैः यैः अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् आत्मनिवेदनं कृतं तेषां का परिदेवना।

भावार्थ—श्रीहरिके अधीन किये हे प्राण जिननें ऐसे, जिन

भक्तनने आत्मनिवेदन कियो है, उनकूं कौनसी चिन्ता है अर्थात् उन्हे कोई तरहकी चिन्ता नहीं है ।

कठि० समास—कात्स्न्येंन कृष्णाय प्रतिपादिता इति, कृष्णसात्कृता प्राणा यै ते, तै । ४ ।

तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः ।५।

अन्वय—निवेदने, श्रीपुरुषोत्तमे चिन्ता त्याज्या, तथा विनियोगे अपि सा त्याज्या हि हरिः स्वतः समर्थः ।

भावार्थ—'मेरो निवेदन श्रीहरिने स्वीकार कियो के नही' ऐसे श्रीपुरुषोत्तमेभी चिन्ताको परित्याग करनो तथा कदाचित् लौकिककार्यादिमे दूसरेको आश्रय लेवेसों अन्यको विनियोग होय तोभी चिन्ताको त्याग करनों क्योंके श्रीहरि जीवके साधनकी अपेक्षा न राखके स्वयं समर्थ हैं ।

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति[1] ।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात्साक्षिणो भवताऽखिलाः । ६ ।

अन्वय—यस्मात् (जीवः) (अथवा हरिः) पुष्टिमार्गस्थितः (तस्मात्), हरिः लोके तथा वेदे स्वास्थ्यं तु न करिष्यति, (तस्मात्) (लोकवेदकर्मसु) अखिलाः साक्षिणः भवत ।

भावार्थ—जासों जीव अथवा प्रभु अनुग्रहमार्गमे स्थित है तासोश्रीहरि लोक और वेदमें आसक्ति न करावेगे, तासो लोकवेदके कार्य साक्षिमात्र रहके करने चहिये । ६ ।

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञाऽबाधनं वा हरीच्छया ।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम् । ७ ।

---

१. अन्तर्णिजन्तमिदं रूपम् अनु०

अन्वय—गुरोः आज्ञाऽबाधनं (यथास्यात्तथा) सेवाकृतिः, वा हरीच्छया (सेवाकृतिः), अतः सेवापरं चित्तं विधाय सुख स्थीयताम्।

भावार्थ—गुरुकी आज्ञानुसार सेवा करनो अथवा सामग्री-आदिके विषयमे जो प्रभुकी विशेष इच्छा होय तो प्रभुइच्छानु-सारही करनो, ऐसे गुरुकी आज्ञाके अबाधमे वा बाधमे प्रभुसेवामे चित्तकूं तत्पर करके सुखसूं रहनो।

कठि० समा०—आज्ञाया अबाधन आज्ञाबाधनं। हरे इच्छा हरीच्छा तया। सेवाया पर सेवापर। ७।

चित्तोद्वेगं विधायाऽपि हरिर्यद्यत्करिष्यति।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्। ८।

अन्वय—चित्तोद्वेगं विधाय अपि हरिः यत् यत् करिष्यति, (तत्-तत्) तस्य तथा एव लीला इति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्।

भावार्थ—मनमे उद्वेग करकेभी 'श्रीहरि जो जो करे सो सो सब उनकी वैसीही लीला (क्रीडा) है' यह मानके चिन्ताको जल्दी परित्याग करनो। ८।

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः। ९।

अन्वय—तस्मात् सर्वात्मना नित्यं मम श्रीकृष्णः शरणं (इति) सततं वदद्भिः एव स्थेयं इति एव मे मतिः।

भावार्थ—तासों 'सबतरहसों सर्वदा मेरे श्रीकृष्णही रक्षा करवेवारे है' ऐसें सदा कहतेही रहनों येही मेरी मति है॥ ९॥

। इति श्रीनवरत्नव्रजभाषा सम्पूर्णा।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

अंतःकरणप्रबोधकी विवृति ।

अंतःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु ।
कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् । १ ।

अन्वय—हे अतःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु, कृष्णात् परं वस्तुतः दोषवर्जितं दैवं न अस्ति ।

भावार्थ—हे अंतःकरण ! मेरे वाक्यकूं तू सावधान होयके सुन, कृष्णसूं दूसरो वास्तवमे दोषरहित देवता नहीं है ।

कठि० समास—अवधानेन सहित साऽवधानं, तस्य भाव सावधान्तता, तया । १ ।

चाण्डाली चेद्राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता ।
कदाचिदपमाने वा मूलतः का क्षतिर्भवेत् । २ ।

अन्वय—चाण्डाली चेत् राजपत्नी जाता, च राज्ञा मानिता कदाचित् अपमाने (सति) वा मूलतः का क्षतिः भवेत् ।

भावार्थ—चाण्डाली जो राजाकी रानी होय, और राजाने दूसरी रानीन करते वाकूं अधिक मानी होय, और फिर कोई-समय वाहीके अपराधसूं वाको अपमान भयो होय, तो राजपत्नीपनेमे कहा हानि भई ? अर्थात् कछु नही, ऐसेहीं हे अंतःकरण ! कदाचित् प्रभु, फल देयवेमे विलंबभी करै तथापि अंगीकारमें कोईतरहकी हानि नही है, तासूं चिन्ता नहीं करनी । २ ।

समर्प्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः ।
का ममाऽधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् । ३ ।

अन्वय—अहं समर्पणात् पूर्वं किं सदा उत्तमः स्थितः ? मम अधमता का भाव्या ? यतः पश्चात्तापः भवेत् ।

भावार्थ—मे, समर्पणके पूर्वमे कहा सदा उत्तमही हो ? तासूं फलविलंबमेभी मेरी हलकावट कहा विचारनी, जासूं पश्चात्ताप होय । अर्थात् फलविलंबकी दशामेभी '**में पहलेसूं तो अच्छो हूं**' यों विचारके अपनो **हलकोपन न विचारनो** और पश्चात्तापभी न करनो । ३ ।

सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति ।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत् । ४ ।

अन्वय—विष्णुः (श्रीहरिः) सत्यसंकल्पतः अन्यथा तु न करिष्यति, (तस्मात्) सततं आज्ञा एव कार्या, अन्यथा स्वामिद्रोहः भवेत्।

भावार्थ—सर्वत्रव्यापक श्रीहरि सांचेविचारवारे है । तासूं फलदेयवेके विषयमें औरतरहसूं तो नही करेगे । तासूं सर्वदा प्रभुकी आज्ञाके अनुसारही सेवा करनी । वैसे नही करवेसूं स्वामीको द्रोह होय है ।

कठि० समास—सत्य सकल्पो यस्य स सत्यसकल्प, तस्मात् । ४ ।

सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति ।
आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगासागरसंगमे । ५ ।
याऽपि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्द्वयं मया ।
देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः । ६ ।

अन्वय—सेवकस्य तु अयं धर्मः (अस्ति) स्वामी स्वस्य

करिष्यति, पूर्वं तु गंगासागरसंगमे या आज्ञा जाता, पश्चात् मधुवनेऽपि या जाता, मया देहदेशपरित्यागः तद्द्वयं न कृतं, तृतीयः लोकगोचरः (कृतः)।

भावार्थ—सेवकको तो श्रीहरिकी आज्ञा करनी येही धर्म है, प्रभु अपने भक्तको सब कार्य स्वयं करेंगे। पहले तो गंगासागरसंगमपे जो देहपरित्यागरूप आज्ञा भयी, और पीछे मधुवनमेंभी जो देशपरित्यागरूप आज्ञा भई, मैंने देहदेशपरित्यागरूप दोनो आज्ञा नहीं करीं। परन्तु तीसरी लोकमे प्रसिद्ध संन्यासग्रहणपूर्वक गृहको परित्यागरूप आज्ञा करी।

कठि० समास—गंगा च सागरश्च गंगासागरौ तयो सगम, तस्मिन्। तयो द्वयं तद्द्वयम्। ५-६।

पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं नचाऽन्यथा।
लौकिकप्रभुवत्कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन। ७।

अन्वय—अह सेवकः अन्यथा न, तत्र पश्चात्तापः कथं, च कृष्णः लौकिकप्रभुवत् कदाचन न द्रष्टव्यः।

भावार्थ—मे प्रभुको सेवक हूं और नहीं हूं, तासूं फलमें विलंब होय तौभी पश्चात्ताप क्यों करनो। और श्रीहरिकूं लौकिकराजा आदिकी तरह चलचित्त कभीभी नही जानने चहिये।

कठि० समास—लोके भव लौकिक, लौकिकश्चासौ प्रभुश्च लौकिकप्रभु लौकिकप्रभुणा तुल्य लौकिकप्रभुवत्। ७।

सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोसि सुखी भव।
प्रौढापि दुहिता यद्वत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे। ८।
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा।

अन्वय—भक्त्या सर्वं समर्पितं, कृतार्थः असि, सुखी भव,

यद्वत् प्रौढा अपि दुहिता स्नेहात् वरे न प्रेष्यते, तथा देहे न कर्तव्यं अन्यथा वरः न तुष्यति ।

भावार्थ—भक्तिसूं आत्मासहित सब अपनी वस्तुनको अर्पण तेने कियो, तासूं तू कृतार्थ है। और पंहलेंकी तरह सुखी हो। हे अन्तः-करण जैसे कितनेक अज्ञानी पतिके यहां जायवे लायकभी कन्याकों स्नेहसों वाके पतिके यहां नहीं भेजे हैं, तैसें देहत्यागके विषयमें तोकूंभी विलंब नहीं करनो चहिये। विलंबकरवेसूं प्रभु प्रसन्न नहीं होंयगे। ८।

लोकवच्चेत्स्थितिर्मे स्यात्किं स्यादिति विचारय । ९ ।
अशक्ये हरिरेवाऽस्ति मोहं मागाः कथंचन ।
इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः । १० ।
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत् ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यकृतोऽन्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः ।

अन्वय—(हे अंतःकरण) लोकवत् चेत् मे स्थितिः स्यात् किं स्यात् इति (त्वं) विचारय अशक्ये हरिः एव अस्ति (अतः) कथंचन मोहं मागाः श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य चित्तं प्रति इति हितं वचः, यत् आकर्ण्य भक्तः निश्चिन्ततां व्रजेत् ।

भावार्थ—हे अंतःकरण अन्यलोककीतरह मेरीभी जो लौकिकउत्कर्षादिके लिये लोकमें स्थिति होय तो कहा होय, यह तूही विचारकर। अर्थात् लौकिक उत्कर्षके लिये प्रभुकी अप्रसन्नता करनी योग्य नहीं है। अशक्य कार्यमें श्रीहरिही पुरुषार्थसिद्ध करवेवारे हैं। तासूं कोईतरहकी चिन्ताकूं प्राप्त मत होय। श्रीहरिके दास श्रीवल्लभाचार्यको अंतःकरणके प्रति यह हितकारी (यथार्थ) वचन है जाकूं अच्छीतरह सुनकें भक्तजन, चिन्तारहित होयजांय हैं। ९—१० ।

। ऐसें श्रीअंतःकरणप्रबोधकी व्रजभाषा सम्पूर्ण भई ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें.

विवेकधैर्य्याश्रयकी विवृति ।

विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथाश्रयः ।
विवेकस्तु 'हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति' । १ ।

अन्वय—विवेकधैर्ये सतत रक्षणीये, तथा आश्रयः (रक्षणीयः), (अथवा भवति) तु हरिः निजेच्छातः सर्व करिष्यति (इति) विवेकः ।

भावार्थ—विवेक और धैर्य हमेशां राखने तथा आश्रयभी राखनो । और **'श्रीहरि अपनी इच्छासूंही अथवा अपने भक्तनकी इच्छासूं सर्व करेंगे'** याको नाम विवेक है ।

कठि० समास—निजा चासौ इच्छा च, तस्या निजेच्छात । किवा, निजाना इच्छा निजेच्छा ।

प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात् ।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च । २ ।

अन्वय—स्वाम्यभिप्रायसंशयात्, प्रार्थिते वा ततः कि स्यात्, हि तस्य सर्वत्र सर्वं, च सर्वसामर्थ्य एव ।

भावार्थ—'प्रभुकूं हमारी इच्छित वस्तु देयवेकी इच्छा है के नहीं' ऐसो संदेह होयवेसूं जो प्रार्थनाभी करी जाय तो कहा होय । अर्थात् कछु फल नहीं होय । तासों 'श्रीहरिकूं सर्वत्र सर्ववस्तु लभ्य है' और 'सर्ववस्तुके देयवेकी सामर्थ्यभी है ही' यों मनमे दृढता राखके सेवा करनो ।

कठि० समा—स्वामिन अभिप्राय स्वाम्यभिप्राय, तस्मिन् सशय.

स्वाम्यभिप्रायसशय , तस्मात् । समर्थस्य कर्म सामर्थ्यं, सर्व च तत्सामर्थ्य च सर्वसामर्थ्यम् । २ ।

अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात् ।
विशेषतश्चेदाज्ञा स्यादंतःकरणगोचरः । ३ ।
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात् ।

अन्वय—स्वाम्यधीनत्वभावनात् अभिमानः च संत्याज्यः, अंतःकरणगोचरः (इति) चेत् विशेषतः आज्ञा स्यात्, तदा विशेषगत्यादि भाव्यं, तु दैहिकात् भिन्नं (भाव्यम्) ।

भावार्थ—'मे स्वामीके अधीन हूं' ऐसी भावनासू अभिमानकोभी वासनासहित परित्याग करनो । श्रीहरि सब भक्तनके अतःकरणमे विराजे है । तासूं यदि सेवादिके विषयमे स्वप्नादिद्वारा कछु विशेष आज्ञा होय तो लौकिक कार्यके सिवाय सेवा सामग्री आदि, प्रभुकी आज्ञाके अनुसार करनी चहिये ।

कठि० समास—स्वामिन अधीन स्वाम्यधीन , तस्य भाव स्वाम्यधीनत्वं, तस्य भावनं, तस्मात् । ३ ।

आपद्गत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा । ४ ।
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम् ।
विवेकोऽयं समाख्यातो धैर्यं तु विनिरूप्यते । ५ ।

अन्वय—च आपद्गत्यादिकार्येषु सर्वथा हठः त्याज्यः, सर्वत्र अनाग्रहः (कर्तव्यः) धर्माऽधर्माग्रदर्शनं (कर्तव्यं) अयं विवेकः समाख्यातः, धैर्यं तु विनिरूप्यते ।

भावार्थ—और धनके संकोचकी अवस्थामे जो सेवाके बडे कार्य आमे उनमे 'कर्जकरकेभी यह करूंगो' ऐसो हठ न करनो। और 'सेवाको परित्यागकरकेभी' हवनादि कार्य करूंगो एसोभी

आग्रह न करनो किन्तु सेवाके अनवसरमे वे कार्य करने तथा श्रुत्युक्त स्मृत्युक्त और भगवद्धर्मके बलाबलको विचारकरके अपने अधिकारानुसार कार्य करने । ४–५ ।

त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा ।
तक्रवद्देहवद्भाव्यं जडवद्गोपभार्यवत् । ६ ।

अन्वय—आमृतेः सर्वतः सदा त्रिदुःखसहनं धैर्यं, तक्रवद्देहवत् जडवत् गोपभार्यवत् भाव्यम् ।

भावार्थ—'मरणपर्यन्त सबतरहसों और सबसमयमें आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक (परीक्षाकेलिये भगवद्दत्त) 'तीनों तरहके दुःखनको सहनकरनो' धैर्य कहावे है । देहाध्यासको परित्याग करवेके लिये छाछकीतरह विचार करनो अर्थात् जैसे घीनिकासे पीछे कोईभी छाछमे मोह नही राखे है ऐसे देहमे मोह न करनो । आध्यात्मिक दुःख सहन करते समय जडभरतके धैर्यको विचार करनो । और भगवान्ने परीक्षार्थ दिये दुःखनके भोगसमयमे गोपस्त्रीकीतरह दुःख सहन करनो । अथवा अंतर्गृहगत गोपीनकीतरह भगवद्विरह सहन करनो । ६ ।

क० समा०—तक्रेण तुल्यं तक्रवत्, तच्चासौ देहश्च तक्रवद्देह, तेन तुल्य तक्रवद्देहवत् । भार्याणा समूह भार्य, गोपाना भार्यं गोपभार्यं तेन तुल्यं गोपभार्यवत् ।

प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत् ।
भार्यादीनां तथाऽन्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् । ७ ।

१–हला नृप पतिमवेक्ष्य भुजगदष्ट देशान्तरे विधिवशाद्गणिकाऽस्मि जाता ।
पुत्र पतिं समधिगम्य चिता प्रविष्टा शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम् ।१।
इत्याख्यायिकाऽत्रानुसधेया ।

अन्वय—यदृच्छातः चेत् प्रतीकारः सिद्धः आग्रही न भवेत्, भार्यादीनां च अन्येषां च असतः आक्रमं सहेत् ।

भावार्थ—भगवदिच्छासों जो दुःखनको उपाय होय जाय तो दुःख सहन करवेमे आग्रह न करै, और स्त्रीपुत्रादि, बन्धुवर्ग, तथा और सेवकादिने किये अपमानकोंभी सेवानिर्वाहके लिये सहन करै । ७ ।

स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत् ।
अशूरेणाऽपि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात् । ८ ।

अन्वय—स्वयं इन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत्, स्वस्य असामर्थ्यभावनात् अशूरेण अपि कर्तव्यम् ।

भावार्थ—अपने भोगवेके लिये सर्वविषयनको शरीरवाणीमनसूं परित्याग करै, और 'इन्द्रियनको दमनकरनो मेरी शक्तिसूं बाहर है' ऐसे विचारसूं असमर्थ भये पुरुषकूंभी इन्द्रियनको दमन करनो चहिये ।

कठि० समास—कायश्च वाक् च मनश्च कायवाङ्मन, तेन । समासान्तविधेरनित्यत्वम् ।

अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् ।
एतत्सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते । ९ ।

अन्वय—अशक्ये हरिः एव अस्ति, (यतः)आश्रयतः सर्वं भवेत्, अत्र एतत्सहनं उक्तं, अतः आश्रयः निरूप्यते ।

भावार्थ—आपसूं न बनसकै ऐसे कार्यमे श्रीहरिही रक्षक है, क्यों के प्रभुके दृढ आश्रयसों सर्वकार्यनकी सिद्धि होय है, यहां यह त्रिदुःखसहनरूप धैर्यको निरूपण कियो, अब आगे आश्रयको निरूपण करे हैं । ९ ।

ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः ।
दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे । १० ।
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चापि क्रमे कृते ।
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वत्र शरणं हरिः । ११ ।

अन्वय—ऐहिके पारलोके च दुःखहानौ तथा पापे, भये (च) कामाद्यपूरणे, सर्वथा हरिः शरणं (अस्ति), (किंच) भक्तद्रोहे, भक्त्यभावे च भक्तैः क्रमे कृते, अपि वा अशक्ये वा सुशक्ये सर्वथा हरिः शरणम् ।

भावार्थ—या लोकसंबंधी और परलोकसबंधी कार्यमे, तीन-प्रकारके दुःखनकी निवृत्ति होयवेमे, अज्ञानसूं बनते पापनके विषयमे, और राज चौर नरकादिके भयमे, तथा मनोरथकी अप्राप्तिमे, सबतरहसूं भक्तके दुःख दूरकरनवारे श्रीहरिही रक्षाकरवेवारे है, तथा भक्तनके द्रोहबनवेमे, भक्तिके अभावमे, और भक्तनने अपनो तिरस्कार कियो होय वासमयमेभी, किंवा अपनसूं न बनतेकार्यमे अथवा अच्छीतरह बनसकतो होय ऐसे कार्यमे, सर्वसमयमे श्रीहरिही रक्षाकरवेवारे है ।

कठि० समास—इह भव ऐहिक । परलोके भव पारलौकिकम् । कामादीना अपूरण कामाद्यपूरण, तस्मिन् । १०–११ ।

अहंकारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे ।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथांऽतेवास्यतिक्रमे । १२ ।
अलौकिकमनःसिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः ।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् । १३ ।

अन्वय—अहंकारकृते च एव पोष्यपोषणरक्षणे च एव पो-

व्यातिक्रमणे, तथा अंतेवास्यतिक्रमे, अलौकिकमनःसिद्धौ 'सर्वार्थे हरि शरण' एवं सदा चित्ते भाव्यं च वाचा परिकीर्तयेत् ।

भावार्थ—स्वभावके वशहोके कोईसमय जो अहंकार कियो होय तामे, औरभी पालन करवेलायक अपने स्त्रीपुत्रादिकी रक्षा-करवेमे, और स्त्रीपुत्रादिकनने अपनो अपराध कियो होय ता समयमे तथा शिष्यादिकनसूं कछू चूक होयगई होय वा समयमें और अलौकिक देहेन्द्रियादिकी प्राप्तिमे, विशेष कहा मनोरथ-मात्रकी सिद्धिमे 'श्रीहरि मेरे रक्षक है' ऐसे सदा हृदयमे विचारते रहनो, और मुखसूंभी कहते रहनो ।

कठि० समास—अहंकारेण कृत अहकारकृत तस्मिन् । अलौकिकं च तत् मनश्च अलौकिकमन (मन इति देहेन्द्रियादीनामुपलक्षणम्) अलौकिकमनस सिद्धि अलौकिकमन सिद्धि, तस्याम् । १२–१३ ।

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च ।
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्। १४ ।

अन्वय—अन्यस्य भजनं तत्र स्वतः गमनं एव, च कार्य-मात्रे अपि ततः (अथवा) अन्यत्र प्रार्थना विवर्जयेत् ।

भावार्थ—अन्यदेवनको भजन, तेसेंहीं अपनेआप अथवा केहेसूं उनके शरणजानो, और कोईभी कार्यमे प्रभुसूं अथवा अन्यदेवनसों प्रार्थना करनी इन सबबातनको परित्याग करनो १४।

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।
ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्मम । १५ ।

अन्वय—अविश्वासः तु न कर्तव्यः, सः सर्वथा बाधकः (भवति), ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ निर्ममः सन् प्राप्तं सेवेत ।

भावार्थ—प्रभुमे अथवा शरणजायवेमे अविश्वास तो कभी

न करनों । क्योके अविश्वास (अन्वयव्यतिरेकसूं) हानिकारक ही है । ब्रह्मास्त्र और पपीहा पक्षीको विचार करनो । अर्थात् जो अविश्वास करै तो जैसे राक्षसनने हनुमान्‌जीकूं प्रथम ब्रह्मास्त्रसूं बाधे, फिर वाकेऊपर अविश्वासकरके और रस्सी वगेरहसूं बांधे तब ब्रह्मास्त्रने हनुमानजीकूं स्वयं छोडदीने और राक्षसनकूं लंकादाहादि अनेक दुःख भोगने पडे। अथवा जैसे चातक मेघपै विश्वास राखे है तो वाके अविश्वास न करवेसूं मेघभी स्वातिवर्षाद्वारा वाकूं सुखदेय है । ऐसेही प्रभुमे अविश्वास सबतरहसूं हानिकरवेवारो है । तासूं थोडो के वहोत जो मिलै तामे सेवा करै । १५ ।

यथाकथंचित्कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि ।
किं वा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम् । १६ ।

अन्वय—उच्चावचानि कार्याणि अपि यथाकथंचित् कुर्यात्, वा वहुना प्रोक्तेन किम् ? हरिं शरणं भावयेत् । १६ ।

भावार्थ—लौकिक वैदिक सबतरहके कार्यनकूंभी जैसे बने वैसे करै, बहोत कहा कहै केवल 'श्रीहरि मेरे रक्षक है' ऐसो विचार करैं, । १६ ।

एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम् ।
कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुस्साध्या इति मे मतिः ।१७।

अन्वय—एवं, सर्वेषां सर्वदा हितं आश्रयणं प्रोक्तम्, हि कलौ भक्त्यादिमार्गाः दुस्साध्या इति मे मतिः (अस्ति)।

भावार्थ—यारीतिसूं सदा सबको हितकरवेवारो भगवान्‌को आश्रय कह्यो । कारणके कलियुगमे चार भेदवारे भक्तिमार्ग कठिनसूं सिद्ध होंय हैं, यह मेरी बुद्धि है । १७ ।

। इति श्रीविवेकधैर्याश्रयटीका सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें.

कृष्णाश्रयकी टीका ।

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि ।
पाषंडप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम । १ ।

अन्वय—कलौ खलधर्मिणि सर्वमार्गेषु नष्टेषु च लोके पाषंडप्रचुरे मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—दुष्ट धर्मवारे या कलियुगमे वेदोक्त सब मार्ग लुप्त होय गये है, और लोकभी अतिपाखंडी होयगये है, तासों अब मेरे श्रीहरिही रक्षा करवेवारे है ।

कठि० समास—खलश्चासौ धर्मश्च खलधर्म, खलधर्म अस्ति यस्मिन् खलधर्मी, तस्मिन् । पाषंड प्रचुर यस्य स पाषडप्रचुर, तस्मिन् ।१।

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च ।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम । २ ।

अन्वय—देशेषु, पापैकनिलयेषु सत्पीडाव्यग्रलोकेषु म्लेच्छाक्रान्तेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः (अस्ति) ।

भावार्थ—सब देश, पापमात्रके रहवेके प्रधान घर हो गये हैं, और उनके रहनेवारे लोकभी सत्पुरुषनकी पीडाकूं देखके अधीर होगये हैं, तथा म्लेच्छनने दबायलीने है तासूं या समय श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षाकरवेवारे है ।

कठि० समास—एके च ते निलयाश्च एकनिलया, पापस्य एकनिलया पापैकनिलया, तेषु । सता पीडा सत्पीडा, तया व्यग्रा, लोका येषु ते, तेषु २

गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह ।
तिरोहिताधिदैवेषु[1] कृष्ण एव गतिर्मम । ३ ।

अन्वय—गंगादितीर्थवर्येषु, इह दुष्टैः एव आवृतेषु तिरोहिताधिदैवेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—या कलिमे दुष्टजननसूं आक्रान्त, गंगादिकूं आदिलेके उत्तम २ तीर्थनकेभी जब अधिष्ठाता देवगण (किवा आधिदैविक तीर्थ) तिरोहित होयगये तो अब मेरे श्रीकृष्णही रक्षक है ३

अहंकारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु ।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम । ४ ।

अन्वय—सत्सु अहंकारविमूढेषु, लाभपूजार्थयत्नेषु, पापानुवर्तिषु, मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—सत्पुरुष लोगभी जब अपने लाभ और मानके लिये अनुचित प्रयत्न करवे लगगये, तथा पापको अनुसरण करवे लगे और अहंकारसूं भ्रान्त होगये तो अब मेरे श्रीकृष्ण ही रक्षा करवेवारे हैं ।

कठि० समास—लाभश्च पूजा च लाभपूजे, ताभ्यामिति लाभपूजार्थं, लाभपूजार्थ यत्न येषा ते, तेषु ।

अपरिज्ञाननष्टेषु मंत्रेष्वव्रतयोगिषु ।
तिरोहितार्थवेदेषु कृष्ण एव गतिर्मम । ५ ।

अन्वय—मंत्रेषु, अपरिज्ञाननष्टेषु अव्रतयोगिषु तिरोहितार्थवेदेषु (सत्सु), मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—वैदिक अथवा अन्य मंत्र भी जब अज्ञानसूं नष्ट होयगये, और ब्रह्मचर्यादि व्रतरहित पुरुषनके पास रहवेसूं

---

१ र्थदैवेषु घ पुस्तक, र्थदेवे ग पुस्तक, धिदैवेषु क पुस्तक पाठ.

हीन होगये, तथा उनके अर्थ और वेद विस्मृत होय गये हैं तब आज मेरे श्रीकृष्ण ही रक्षा करवेवारे हैं ।

नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु ।
पाषंडैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम । ६ ।

अन्वय—सर्वकर्मव्रतादिषु, पाषंडैकप्रयत्नेषु नानावादविनष्टेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—सब कर्म और व्रत आदि जब नास्तिकनके प्रश्न और वादनसूं नष्ट होगये, तथा दम्भके लियेही होयवे लगगये तो अब श्रीकृष्ण मेरे रक्षक है ।

अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः ।
ज्ञापिताऽखिलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम । ७ ।

अन्वय—अजामिलादिदोषाणां नाशकः ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः अनुभवे स्थितः कृष्ण एव मम गतिः ।

भावार्थ—अजामिल आदि जीवनकेभी दोषनकूं दूरकरवेवारे और ताहीसों प्रगटकियो सर्व निजमाहात्म्य जिनने ऐसे, और अनुभवमें आते श्रीकृष्णही मेरे रक्षक है । ७ ।

प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत् ।
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम । ८ ।

अन्वय—सकला देवाः प्राकृताः (सन्ति) बृहत् गणितानंदकं (अस्ति) हरिः पूर्णानंदः (अस्ति) (अतः) कृष्ण एव मम गतिः ।

भावार्थ—सब देवता भगवच्छक्तिके वशीभूत हैं, और अक्षरब्रह्मभी गिनेभये आनंदवारो है, और श्रीहरि तो पूर्ण आनंदवारे हैं तासूं श्रीकृष्णही मेरे प्राप्त करवेलायक है । ८ ।

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः ।

पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम । ९ ।

अन्वय—विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः पापासक्तस्य दीनस्य मम (अधिकारिणः) कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—विवेक, धैर्य और भक्तिसूं रहित और बहोतकरके पापमेंही आसक्त और दीन, मेरे (अन्य अधिकारीके) श्रीकृष्णही रक्षक हैं ।

कठि० समास—विवेकश्च धैर्य च भक्तिश्च विवेकधैर्यभक्तय , ता आदिर्यस्य तत् विवेकधैर्यभक्त्यादि, तेन रहित विवेकधैर्यभक्त्यादिरहित , तस्य ।९।

सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत् ।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् । १० ।

अन्वय—(यः) सर्वसामर्थ्यसहितः (च) सर्वत्र एव अखिलार्थकृत्, (तं) शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं अहं विज्ञापयामि ।

भावार्थ—जो सर्वशक्तीनसूं युक्त और देशकालवर्णआश्रमादि सर्व अवस्थामे भक्तनके मनोरथकू पूर्ण करवेवारे है, शरणमे आयेको उद्धारकरवेवारे उन श्रीकृष्णकी मै प्रार्थना करूं हूं १०

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत्कृष्णसन्निधौ ।
तस्याश्रयो भवेत्कृष्ण इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् । ११ ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचित कृष्णाश्रय सम्पूर्ण ।

अन्वय—यः इद कृष्णाश्रयं स्तोत्रं कृष्णसन्निधौ पठेत्, तस्य कृष्णः आश्रयः भवेत् इति श्रीवल्लभः अब्रवीत् ।

भावार्थ—जो भक्त या कृष्णाश्रयस्तोत्रको, भगवत्संनिधानमे पाठ करै, वाके श्रीकृष्ण आश्रयरूप होय हैं, यह बात श्रीवल्लभाचार्यने कही । ११ ।

। इति श्रीकृष्णाश्रयटीका सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

चतुःश्लोकीकी विवृति ।

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः ।
स्वस्याऽयमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन । १ ।

अन्वय—सर्वदा सर्वभावेन व्रजाधिपः भजनीयः स्वस्य अयं एव धर्मः क्व कदाचन अपि अन्यः न (अस्ति) ।

भावार्थ—सर्वसमयमे पति पुत्र धन गृह सब श्रीकृष्णही है या भावसूं श्रीव्रजेश्वर श्रीकृष्णकी सेवा करनी चहिये, भक्तनको तो येही धर्म है, देश वर्ण आश्रम आदि कोई अवस्थामे और कोई समयमेभी अन्य धर्म नहीं है ।

कठिनांशका समास—सर्वश्चासौ भावश्च सर्वभाव, अर्थात् सर्वोपि पतिपुत्रगृहादि मम भगवानेवेति आत्मनो भाव । १ ।

एवं सदा स्वकर्तव्यं[2] स्वयमेव करिष्यति ।
प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् । २ ।

अन्वय—सदा स्वकर्तव्यं एवं, (हरिः) स्वयं एव करिष्यति, हि प्रभुः सर्वसमर्थः ततः निश्चिन्तता व्रजेत् ।

भावार्थ—सदा भगवदीयनको कर्तव्य पूर्वोक्त प्रकारको है,

१–'भक्तिमार्गे हरेर्दास्य धर्मोऽर्थो हरिरेव हि । कामो हरेर्दिदृक्षैव मोक्ष कृष्णस्य चेद्भवेत्' । या वचनसू श्रीहरिभक्तनकूं तो हरिसेवा, श्रीहरि, हरिदर्शन, और भगवदीय होनोही क्रमसूं धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष हैं । २ स्म कर्तव्यं ख पाठ ।

फलदानादि श्रीहरिको कर्तव्य है, तासूं वे स्वयं करेगे, कारणके प्रभु कर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थ है, तासूं ऐहिक पारलौकिक मनोरथनके विषयमे निश्चिन्त होयके रहनो । २ ।

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि ।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि । ३ ।

अन्वय—यदि श्रीगोकुलाधीशः सर्वात्मना हृदि धृतः, ततः लौकिकैः वैदिकैः अपि अपरं (फलं) किम् (अस्ति) (इति) (त्व) ब्रूहि ।

भावार्थ—हे अधिकारिवर्ग ? यदि प्रभु श्रीकृष्णकूं सबतरहसू हृदयमें धारणकिये, तो फिर तासूं अधिक, लौकिकश्रेयआदि और वैदिकश्रेयआदि फलनसूंभी कहा प्रयोजन है, ये कहो । ३ ।

अतः सर्वात्मना शश्वद्गोकुलेश्वरपादयोः ।
स्मरणं भजनं चाऽपि न त्याज्यमिति मे मतिः । ४ ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता चतु श्लोकी सम्पूर्णा ।

अन्वय—अतः शश्वत् गोकुलेश्वरपादयोः सर्वात्मना स्मरणं च भजनं अपि न त्याज्यं इति मे मतिः (अस्ति) ।

भावार्थ—अन्य अवतारनकरते श्रीकृष्णने अपने भक्तनकूं स्वरूपानंदको दान विशेष दियो है तासूं, हमेशां श्रीगोकुलपति-श्रीहरिके चरणनको सर्वात्मभावसूं स्मरण तथा सेवन तथा चरण-रज, कभी न छोडनी यह मेरी बुद्धि है । ४ ।

। इति श्रीचतु श्लोकीव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें.

भक्तिवर्धिनीकी टीका ।

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्तथोपायो निरूप्यते ।
बीजभावे दृढे तु स्यात्त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात् । १ ।

अन्वय—यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथा उपायः निरूप्यते, बीजभावे दृढे (सति) त्यागात् तु श्रवणकीर्तनात् (भक्तिः प्रवृद्धा) स्यात् ।

भावार्थ—जैसे भक्ति अत्यंत वृद्धिकूं प्राप्त होय, तेसो उपाय बतावें हैं, अनुग्रहसूं भयो प्रेमरूप बीज जब दृढ होय जाय, तापीछे भक्तिमार्गीयसाधननसूं, अन्य साधनको त्याग करवेसूं, तथा श्रवण स्मरण कीर्तनादि करवेसूं, भक्ति प्रवृद्ध होय है ।

कठि० समास—बीजरूपो भाव बीजभाव । श्रवणकीर्तनयो समाहार तस्मात् । १ ।

बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः ।
अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया[1] श्रवणादिभिः । २ ।

अन्वय—बीजदार्ढ्यप्रकारः तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृत्तः (सन्) पूजया श्रवणादिभिः कृष्णं भजेत् ।

भावार्थ—प्रेमरूपबीजके दृढ होयवेको प्रकार तो ये हे के, गृहस्थाश्रममे रहके अपने वर्णाश्रमप्रयुक्त धर्मनकूं साधन करतो, पूजासूं (प्रेमपूर्वक दर्शन करते सेवा करनो) और श्रवण कीर्तनादिकनसूं श्रीकृष्णकी तनुजा वित्तजा सेवा करै ।

---

१ पूजा दधुर्विरचिता प्रणयावलोकैरिति समाभिभाषा ।

कठि० समास—दृढस्य भाव दार्ढ्यं, बीजस्य दार्ढ्यं बीजदार्ढ्यं, तस्य प्रकार. । न व्यावृत्त अव्यावृत्त । २ ।

व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा[1] ।
ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत् । ३ ।
बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नाऽपि नश्यति ।

अन्वय—व्यावृत्तः अपि हरौ चित्तं (आसज्य) श्रवणादौ सदा यतेत्, ततः प्रेम आसक्तिः च व्यसनं यदा भवेत् (तर्हि) तत् शास्त्रे दृढ बीज उच्यते, यत् न अपि नश्यति ।

भावार्थ—कदाचित् अशक्तिआदि होयवेसूं जो वर्णाश्रमधर्म न बनसकते होंय तोभी श्रीहरिमे चित्तकूं लगायके श्रवणकीर्तनादिक करवेमे सदा यत्न करे, तेसें करवेसूं श्रीहरिमे प्रेम, आसक्ति, और व्यसन, जब होंय तो वे सब होनोही शास्त्रमे दृढ बीजभाव कह्यो है, जो बीजभाव दुःसंगादि अथवा कालादिकनके बलसूंभी नष्ट नहीं होय है । ३ ।

स्नेहाद्रागविनाशः स्यादासक्त्या स्याद्गृहारुचिः । ४ ।
गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्वं च भासते ।
यदा स्याद्व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात्तदैव हि । ५ ।

अन्वय—स्नेहात् रागविनाशः स्यात्, आसक्त्या गृहारुचिः स्यात्, गृहस्थाना (पदार्थानां) बाधकत्वं च अनात्मत्व भासते, यदा कृष्णे व्यसनं तदा एव (भक्तः) कृतार्थः स्यात्, (इति) हि ।

भावार्थ—प्रभुमे प्रीति होयवेसूं अन्यत्र जगद्वर्ती पदार्थनमे भये स्नेहको नाश होय है, और प्रभुमे आसक्ति होयवेसूं गृहादिकमें

१–अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ।

अरुचि होय जाय है और ताहीसूं गृहवर्ती सर्व पदार्थ 'प्रभुप्रीतिके नाशकरवेवारे है' तथा 'प्रभुसंबधी नहीं है' ऐसे दीखवे लगै है, जब श्रीहरिमे आसक्ति होते होते व्यसन होय जाय है तबही भक्त कृतार्थ कृतकृत्य कह्यो जाय है, यह निश्चय है । ४–५ ।

ताद्दशस्याऽपि सततं गृहस्थानं विनाशकम् ।
त्यागं कृत्वा यतेद्यस्तु तदर्थार्थैकमानसः । ६ ।
लभेत सुद्दढां भक्तिं सर्वतोप्यधिकां पराम् ।

अन्वय—ताद्दशस्य अपि गृहस्थान विनाशकं, (तस्मात्) त्यागं कृत्वा तु यः तदर्थार्थैकमानसः (सन्) यतेत्, (सः) सुद्दढां सर्वतः अपि अधिकां परां भक्ति लभेत ।

भावार्थ—कृतार्थभये अर्थात् प्रभुके साक्षात्सबंधवारे भक्तको घरमे रहनो प्रभुस्नेहकूं मिटायवेवारो है, तासूं गृहादिको त्यागकरके जो भक्त, फलरूपा भक्तिकेभी फलरूप श्रीकृष्णमे मनकूं द्दढ लगातो भयो यत्न करै तो वह बडीगाढी तथा चारोंतरहकी मुक्तिनसूंभी अधिक फलरूपा भक्तिकूं प्राप्त होय ।

कठि० समा०—स एव अर्थो यस्या सा तदर्था, तस्या अर्थ तदर्थार्थ, तदर्थार्थे एकं मानस यस्य स तदर्थार्थैकमानस । ६ ।

त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात्तथान्नतः । ७ ।
अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः ।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति । ८ ।

अन्वय—त्यागे दुःसंसर्गात् तथा अन्नतः बाधकभूयस्त्वं, अतः हरिस्थाने तत्परैः तदीयैः सह स्थेयं, (किंवा) अदूरे वा विप्रकर्षे (स्थेयं) यथा चित्तं न दुष्यति ।

भावार्थ—असांप्रदायिक त्यागकरवेमे अदृष्टादिसूं भये दुःसंग तथा असमर्पित आदि अन्नसूं, वेसे प्रभुप्रेमहोयवेमे बहोतसे प्रतिबंध होयवेकी संभावना है, तासूं जहा निरंतर सेवाप्रवाह चलतो होय ऐसे पवित्र वैष्णवतीर्थनमे हरिसेवातत्पर भगवदीयनके संग रहै, यदि ऐसे रहवेमेभी अभिमानादिसूं चित्तमे कोईतरहको दोष आतो होय, तो वहांही अलग पासमे अथवा अति दूर रहै, जासूं चित्त दुष्ट न होय ।

कठि० समास—भूयस भाव भूयस्त्व, बाधकाना भूयस्त्व बाधकभूयस्त्वम् । तस्मिन् परा , तत्परा , तै । ७–८ ।

सेवायां वा कथायां वा यस्याऽऽसक्तिर्दृढा भवेत् ।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वाऽपीति मे मतिः । ९ ।

अन्वय—यस्य सेवाया वा कथायां वा दृढा आसक्तिः यावज्जीवं भवेत्, तस्य नाशः क अपि न (स्यात्) इति मे मतिः (अस्ति) ।

भावार्थ—जा भक्तकी प्रभुसेवामे अथवा प्रभुचरित्रकथामें दृढ आसक्ति जीवनपर्यन्त होय तो वा भक्तको कोईभीदेश अथवा कालमे नाश नहीं होय है, यह मेरी (श्रीवल्लभाचार्यकी) बुद्धि है ।

कठि० समास—जीवनं जीव , यावत् जीव- यावज्जीवम् । ९ ।

बाधसंभावनायां तु नैकान्ते वास इष्यते ।
हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः । १० ।

अन्वय—बाधसंभावनायां तु एकान्ते वासः न इष्यते, तु हरिः सर्वतः रक्षां करिष्यति (तत्र) न संशयः (अस्ति) ।

भावार्थ—गृहादिछोडके हरिस्थानमे रहवेमें यदि कोईतरहसूं प्रभुप्रेममे प्रतिबंध मालुम पडतो होय तो एकान्तमे वास नहीं करनो चहिये, गृहादिमे रहवेसूं अनेक विघ्न पडेगे ऐसो तर्कभी युक्त नहीं है, क्योंके सर्वदुःखदूरकरवेवारे श्रीकृष्णही अपनेभक्तनकी सबतरहसू रक्षा करेंगे, यामे कछु संदेह नहीं है । १० ।

इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्वं निरूपितम् ।
य एतत्समधीयेत तस्यापि स्याद्दृढा रतिः । ११ ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता भक्तिवर्द्धिनी सम्पूर्णा ।

अन्वय—इत्येवं गूढतत्वं भगवच्छास्त्रं (मया) निरूपित, यः एतत् समधीयेत तस्य अपि (हरौ) दृढा रतिः स्यात् ।

भावार्थ—या रीतिसूं दुर्लभ है सार जाको ऐसो ये हरिशास्त्र मैंने कह्यो, जो कोई याको अभ्यास करै, वाकीभी श्रीहरिमें गाढी प्रीति होय है ।

कठि० समास—गूढं तत्व यस्य तत् गूढतत्वम् । ११ ।

। इति श्रीभक्तिवर्द्धिनीव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें

जलभेदकी टीका ।

नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान् ।
भावान्विंशतिधा भिन्नान्सर्वसंदेहवारकान् । १ ।

अन्वय—हरिं नमस्कृत्य तद्गुणानां विभेदकान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसंदेहवारकान् भावान् वक्ष्ये ।

भावार्थ—श्रीहरिकूं नमस्कार करके श्रीहरिके गुणनकूं जुदे २ दिखायवेवारे, और बीस प्रकारसूं न्यारे २, तथा फलसाधनादिके सर्वसन्देहनकों दूर करवेवारे, ऐसे जीवनके भावन (मनोविकार) कूं मे कहूंगो ।

कठि० समास—तस्य गुणाः, तद्गुणाः, तान् । सर्वे च ते सन्देहाश्च, तेषां वारकाः तान् । १ ।

गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तो हि जले मताः ।

अन्वय—यावन्तः (भेदाः) जले मताः तावन्तः तु गुणभेदाः (सन्ति) हि ।

भावार्थ—'कूप्याभ्यः स्वाहा कुल्याभ्यः स्वाहा' इत्यादि तैत्तिरीयसंहितामे जितने भेद जलमे कहेहै, उतनेही श्रीहरिके गुणनके भेद हे यह निश्चय है ।

गायकाः कूपसंकाशा गंधर्वा इति विश्रुताः । २ ।
कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेऽपि संमताः ।

अन्वय—गंधर्वा इति विश्रुताः गायकाः रूपसंकाशाः, यावन्तः कूपभेदाः तावन्तः ते अपि संमताः ।

भावार्थ—गंधर्व नामसों शास्त्रमे प्रसिद्ध जो हरिगुणगायक हे वे कूपकीतरह समझने, जितने उत्तममध्यमादिभेदसूं कूपनके भेद है, तैसे ही उत्तममध्यमादि तथा भक्त अभक्त आदिभेदनसों गायकनकेभी अनेक भेद है ।

कठि० समास—कूपै सकाशा कूपसकाशा । कूपाना मेदा । २ ।

कुल्याः पौराणिकाः प्रोक्ताः पारंपर्ययुता भुवि । ३ ।
क्षेत्रप्रविष्टास्ते चाऽपि संसारोत्पत्तिहेतवः ।

अन्वय—भुवि पारंपर्ययुताः पौराणिकाः कुल्याः प्रोक्ताः, ते च अपि (यदि) क्षेत्रप्रविष्टाः (तर्हि) ससारोत्पत्तिहेतवः ।

भावार्थ—भूतलपे परंपरायुक्त जो हरिगुणगायक पौराणिक हे वे नहर समझने, अर्थात् जैसे नहरनको जल स्नानपानादिके उपयोगमे आवै है तैसेही पौराणिकनके भावकोभी हरिभक्तिमे उपयोग होय है, परन्तु जो कदाचित् वे और गंधर्व नहरकीतरह क्षेत्रमे अर्थात् स्त्री और शरीरआदिमे आसक्त होय जाय तो वे केवल अहंताममता करायवेवारे है,

कठि० समास—पुराण विदन्ति ते । परपराया भाव पारपर्यम्, तेन युता । ३ ।

वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्तसंज्ञिताः । ४ ।
जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः ।

अन्वय—वेश्यादिसहिताः मत्ता गायकाः गर्तसंज्ञिताः किच नीचाः गानोपजीविनः तु जलार्थमेव गर्ताः ।

भावार्थ—वेश्याकूं आदि लेकें स्वैरिणी स्त्रीनसूं संगराखवे वारे और मदोन्मत्त जो गायक है वे गर्त (आठहजारधनुषप्रमाणके गढहा) कहे है, अर्थात् जैसें गर्तको जल सत्पुरुषनके काममे नहीं आवे है, ऐसेही वेश्यालंपट प्रमादी गायकनकोभी भाव सत्पुरुषनकूं ग्रहणकरवे लायक नहीं है, प्रत्युत वह अनिष्टफल देयवेवारो है, जाति और धर्मादिसूं नीचे और गानसूं जीविका चलायवेवारे जो गायक हे वे उच्छिष्ट जलके लिये किये गढेलाकी तरह है, अर्थात् जैसे उच्छिष्टको जल कोईके स्पर्शादिके काममेभी नहीं आवै ऐसेही उनको भावभी कछुकामको नहीं है ।

कठि० समास—गर्त इति सज्ञा सजाता येषा ते, । वेश्या आदिर्यासा ता , ताभि सहिता । गानं उपजीवन्ति ते । ४ ।

ह्रदास्तु पंडिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्पराः । ५ ।
संदेहवारकास्तत्र सूदा गंभीरमानसाः ।

अन्वय—भगवच्छास्त्रतत्पराः पंडिताः तु ह्रदाः प्रोक्ताः, तत्र गंभीरमानसाः संदेहवारकाः सूदाः ।

भावार्थ—गीता भागवतादिमे तत्पर ऐसे शास्त्रोत्पन्नबुद्धिवारे विद्वान् जो हे सो ह्रद कहे है, अर्थात् जैसे ह्रद (नदीके एक देशको अगाध जलको स्थान-जाकूं औल कहे हे) को जल जैसे उत्तम है ऐसे उन पंडितनको भावभी उपयोगार्ह श्रेष्ठ है । और वैसे पंडितनमेभी जो मनके गंभीर और संदेहनके दूर करवेवारे हे वे सुन्दर स्वच्छ और मीठे जलके ह्रद है, उनको भाव स्वरूप और गुणसूं उत्तम है ।

कठि० समास—भगवत शास्त्राणि भगवच्छास्त्राणि , तेषु तत्परा ।५।

सरः कमलसंपूर्णाः प्रेमयुक्तास्तथा बुधाः । ६ ।
अल्पश्रुताः प्रेमयुक्ता वेशंताः परिकीर्तिताः ।

अन्वय—प्रेमयुक्ताः तथा बुधाः सरः कमलसंपूर्णाः (१) प्रेम, युक्ताः अल्पश्रुताः बुधा वेशंताः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—भगवत्प्रेमसहित और भागवतादि तत्पर जो पंडित है सो कमलनसूं भरेभये सरोवर हैं, अर्थात् उनको जल सुगंधपूर्ण है तैसे इनको भावभी प्रेमयुक्त है । और थोडे ज्ञान-वारे और थोडेही प्रेमसू युक्त जो विद्वान् है वे छोटे तलावकी तरह कहे हैं, अर्थात् जैसे छोटे तलावको जल कोई विशेष विघ्नसूं गदलो हो जाय है तैसे ऐसे पडितनको भावभी कोईक अन्य शास्त्रादिके दुःसंगसूं विकृति होयसके है । ६ ।

कर्मशुद्धाः पल्वलानि तथाल्पश्रुतभक्तयः । ७ ।
योगध्यानादिसंयुक्ता गुणा वर्ष्याः प्रकीर्तिताः ।

अन्वय—कर्मनकरके शुद्ध और थोडे शास्त्र और भक्तिवारे जो वक्ता है, वे छोटेसे तलावकी तरह जानने, जैसे तलैयाको जल थोडेही कालपर्यन्त रहसके है ऐसे ही उनको भावभी दुःसंगादिसू नष्ट होयसके है, और अष्टांगयोग तथा ध्यान (ईश्वरालंबनमात्र) इत्यादिसूं युक्त जो गुण हैं वे वर्षाके जलके समान समझने, जैसे वर्षाको जल सर्वत्र फैलके सबके उपयोगमे आवै है ऐसेही उनको भावभी सबके उपयोगमे आवै है ।

कठि० समास—योगश्च ध्यान च योगध्याने, ते आदि येषा तानि, तै॰ सयुक्ता । ७ ।

१–कमलसपूर्णमिति कदाचित्स्यात्, अनायासेन विवक्षितार्थबोधित्वात् ।

तपोज्ञानादिभावेन स्वेदजास्तु प्रकीर्तिताः । ८ ।

अन्वय—तपोज्ञानादिभावेन (संयुक्ताः) तु स्वेदजाः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ—कायक्लेश, तथा सांख्योक्त ज्ञान तथा तामेहीं कह्यो अनात्म्यवस्तुनको त्याग, इनसों युक्त जो कर्मी है वे पसीनासूं भये जलकी तरह है, अर्थात् जैसे स्वेदजल अच्छेव्यवहारमे न आयकें केवल वाकेही शरीरकूं शीतल करै है ऐसे कर्मश्रद्धावारेनकोभी भाव औरनकूं ग्राह्य न होयके उनकूं ही शुद्ध करै है ।८।

अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः ।
कादाचित्काः शब्दगम्याः पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः ।९।

अन्वय—अलौकिकेन ज्ञानेन (युक्ताः) कादाचित्काः तु शब्दगम्याः ये हरेः गुणाः (ते) पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ—भगवदनुग्रहसूं प्राप्तभये ज्ञानकरके युक्त और क्वचित् (कोईसमयही) बुद्धिमें आये तथा प्रामाणिक पुरुषनके शब्दसूं जानवेमे आये ऐसे जो श्रीहरिके गुण है, वे पतच्छब्द (पडवेको शब्द जामे होय ऐसे वर्षाको जल) कहे हैं, अर्थात् जैसे वो जल कदाचित् प्राप्य है, तेसे उनके भावभी कदाचित् बुद्धिमें आरूढ होयवेसूं नियमित समयपै ही मिल सकै है । ९ ।

कठि० समास—पतता शब्द पतच्छब्द पतच्छब्दो येषा ते ।

देवाद्युपासनोद्भूताः पृष्वा भूमेरिवोद्गताः ।

अन्वय—देवाद्युपासनोद्भूताः, भूमेः उद्गता इव पृष्वाः ।

भावार्थ—शिवदुर्गाआदि देवतानके अर्चनकरवेसूं उत्पन्न भये जो गुण अथवा भाव हैं सो मानो भूमिमेसूंही निकसे होंय

ऐसे दीखते ओसके जलकी तरह जानने, अर्थात् जैसे ओसको जल पृथ्वीमेसूं निकसो नहीं है तथापि वैसो दीखे है, ऐसेही उपासकनके भावभी उनके वा उनके उपास्य देवताके नहीं है भगवान्के ही है तथापि उनकेसे दीखे है । और वे लोग उन भावनकूं अपनेही मानकें अहंकार करनलगे हैं, तासूं उनको संग करनो योग्य नहीं है ।

कठि० समास—देवा आदियेषा ते, देवादीनां उपासना, देवाद्युपासनया उद्भूता ।

साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः । १० ।
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पंदमानाः प्रकीर्तिताः ।

अन्वय—साधनादिप्रकारेण (युक्तात्) नवधाभक्तिमार्गतः प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पंदमानाः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ—अपने २ वर्ण और आश्रममे कह्यो जो अग्निहोत्रादिसाधननको प्रकार तासूंयुक्त जो नवधाभक्तिमार्ग वासूं, जब प्रेमकी पूर्णता होय और वा प्रेमपूर्तिसूं जिनके हृदयमे भगवद्भाव और भगवद्धर्मनको प्रादुर्भाव होय वे निर्झरके जलकी तरह हैं, अर्थात् जैसे निर्झरको जल स्नानपानमें उत्तम है, ऐसे वेभी संग करवेमें प्रशस्त है ।

कठि० समास—साधनं आदिर्यस्य स, साधनादे प्रकार तेन । नव प्रकारा यस्या सा, नवधा चासौ भक्तिश्च, नवधाभक्तिरेव मार्ग, तस्मात् । स्फुरन्तो धर्मा येषा, ते । १० ।

यादृशास्तादृशाः प्रोक्ता वृद्धिक्षयविवर्जिताः । ११ ।
स्थावरास्ते समाख्याता मर्यादैकप्रतिष्ठिताः ।

अन्वय—यादृशाः प्रोक्ताः तादृशाः (यदि) वृद्धिक्षयविवर्जिताः मर्यादैकप्रतिष्ठिता (भवेयुः) (तर्हि) ते स्थावराः समाख्याताः ।

भावार्थ—जैसे पूर्वश्लोकमें कह आये वैसे भक्त जो बढघटसूं रहित होंय अर्थात् जिनको भाव सांसरिक विघ्न और कुतर्कनसूं बढतो घटतो न होय और जो वे मर्यादामेंही एक निष्ठावारे होंय तो उन्हे सदा स्थिर रहवेवारे जलकीतरह समझने ।

कठि० समास—वृद्धिक्षयाभ्या विवर्जिता, ते। एके च प्रतिष्ठिताश्च, मर्यादाया एकप्रतिष्ठिता ते। ११।

अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा । १२ ।
संगादिगुणदोषाभ्यां वृद्धिक्षययुता भुवि ।
निरन्तरोद्गमयुता नद्यस्ते परिकीर्तिताः । १३ ।

अन्वय—अनेकजन्मसंसिद्धाः जन्मप्रभृति सर्वदा संगादिगुणदोषाभ्यां भुवि वृद्धिक्षययुताः (किंच) निरन्तरोद्गमयुताः (ये व्याख्यातृगुणाः) ते नद्यः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—अनेक जन्मनकरकें अच्छी सिद्धिकूं प्राप्त भये, और जन्मसूं लेके सदा सत्संग, दुःसंग, काल, कर्म, देश, आदिके गुणदोषनसूं वृद्धि और क्षयकूं प्राप्त होते, तथा निरंतर चलते प्रवाहसूं युक्त, एसे जो गुणानुवादकर्तानके गुण है उन्हे नदीके जलकी तरह समझनो ।

कठि० समास—अनेकानि च तानि जन्मानि च अनेकजन्मानि, तै ससिद्धा । सग. आदिर्येषा ते सगादय, तेषा गुणदोषौ, ताभ्या। निरतरश्चासौ उद्गमश्च निरंतरोद्गम, तेन युताः । १२-१३ ।

एतादृशाः स्वतंत्राश्चेत्सिन्धवः परिकीर्तिताः ।

अन्वय—एतादृशाः चेत् स्वतंत्राः (तर्हि) सिन्धवः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—पहले जैसेही गुण, यदि स्वतंत्र होंय तो वे गुण महानदीनकी तरह कहे हे ।

पूर्णा भगवदीया ये शेषव्यासाग्निमारुताः । १४ ।
जडनारदमैत्राद्यास्ते समुद्राः प्रकीर्तिताः ।

अन्वय—शेषव्यासाग्निमारुताः जडनारदमैत्राद्याः ये पूर्णाः भगवदीयाः ते समुद्राः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ—श्रीसंकर्षण, श्रीव्यास, पुराणवक्ता अग्नि पुराणवक्तावायु तथा जडभरत, नारद और मैत्रेयकूं आदिलेकें जो पूर्ण भागवत है वे समुद्र कहे गये हैं, अर्थात् उनके भाव वा गुण, अक्षोभ्य गभ्भीर तथा नानारत्नोपशोभित है । १४ ।

समुद्रमेभी क्षार और मिष्ट, दो भेद हैं तासूं उनको अलग अलग वर्णन करे हैं ।

लोकवेदगुणैर्मिश्रभावेनैके हरेर्गुणान् । १५ ।
वर्णयन्ति समुद्रास्ते क्षाराद्याः षट् प्रकीर्तिताः ।
गुणातीततया शुद्धान्सच्चिदानंदरूपिणः । १६ ।
सर्वानेव गुणान्विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः ।
तेऽमृतोदाः समाख्यातास्तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् । १७ ।

अन्वय—एके लोकवेदगुणैः (किंच) मिश्रभावेन हरेः गुणान् वर्णयन्ति ते क्षाराद्याः षट् समुद्राः प्रकीर्तिताः, (किंच) ये विचक्षणाः गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानंदरूपिणः विष्णोः

सर्वान् एव गुणान् वर्णयन्ति ते अमृतोदाः समाख्याताः तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् ।

भावार्थ—इन्हींमे कितनेक जो भागवत, लोकमिश्र वेदमिश्र तथा गुणमिश्र भावसूं श्रीहरिके गुणनको वर्णन करे वे क्षारकूं आदिलेके छ समुद्र कहे है, तथा जो अलौकिक बुद्धिमान् भक्त, सत्वादिगुणनकूं छोडदेयवेसूं शुद्ध ऐसे, तथा सच्चिदानंदस्वरूप ऐसे, श्रीहरिके सब गुणनकोही वर्णन करें वे अमृतसमुद्र कहे हैं, उनकी वाणीको पान अत्यंत दुर्लभ है ।

कठि० समास—लोकश्च वेदश्च गुणाश्च, तैः । मिश्रश्चासौ भावश्च मिश्रभाव, तेन । गुणेभ्य अतीता, तेषा भाव तत्ता, तया । चिच्च, तच्च, आनदश्च तेषा समाहार सच्चिदानद, तत् रूपं येषा ते तान् । १५–१६–१७ ।

तादृशानां क्वचिद्वाक्यं दूतानामिव वर्णितम् ।
अजामिलाकर्णनवद्बिन्दुपानं प्रकीर्तितम् । १८ ।

अन्वय—दूतानां इव तादृशानां वाक्यं क्वचित् वर्णितं, (तथा) अजामिलाकर्णनवत् (तच्छ्रवणमपि) बिन्दुपानं प्रकीर्तितं (तदपि दुर्लभमित्यर्थः) ।

भावार्थ—षष्ठस्कंधमे कहे विष्णुदूतनके वाक्यकी तरह, ऐसे (पूर्वोक्त) भक्तनके वाक्य कहूंकहूं वर्णन करे हे तेसेही अजामिलके सुनवेकी तरह, ऐसे वाक्यनको सुननोभी बिन्दुपान कह्यो है, अर्थात् ऐसे वाक्य तथा उनको सुननो यह दोनो दुर्लभ है ।

कठि० समास—अजामिलस्य आकर्णनं अजामिलाकर्णनं, तेन तुल्यं, अजामिलाकर्णनवत् । १८ ।

रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा ।
तदा लेहनमित्युक्तं स्वानंदोद्गमकारणम् । १९ ।

अन्वय—(तद्वचनैः) यदा रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं, तदा (तद्वाक्पानं) स्वानंदोद्गमकारणं (इतिहेतोः) लेहनं इत्युक्तम् (भवति) ।

भावार्थ—संसार स्नेह, अज्ञान तथा कामक्रोधादिकरवेवारे भावनको, जब ऐसे भक्तनके वचन न करके सर्वथा नाश होय जाय, तब वह श्रवण लेहन कह्यो जाय है, क्योंके एसो श्रवण भगवदानंदको उत्पन्न करवेवारो है ।

कठि० समास—रागश्च अज्ञानं च ते आदिर्येषा तेच ते भावाश्च रागाज्ञानादिभावा तेषा । १९ ।

उद्धृतोदकवत्सर्वे पतितोदकवत्तथा ।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चाऽपि तथात्मनः ।२०।

अन्वय—उक्तातिरिक्तवाक्यानि तथा सर्वे उद्धृतोदकवत् (च) पतितोदकवत्, (तेषां) फलं अपि आत्मनः तथा ।

भावार्थ—कहे भये भावनसूं युक्त वाक्य, अथवा उनके कहवेवारे वक्ता ये सब पात्रमें निकासे अथवा धरतीमे पडे जलकी तरह है, अर्थात् निकासो जल जैसें पात्रके अनुसार होय है ऐसेंही उनको भावभी उनके अनुसार होय है, और ऐसे वाक्य अथवा भावनको फलभी वैसोही अर्थात् अल्प ही होय है ।

कठि० समास—उक्तात् अतिरिक्तानि उक्तातिरिक्तानि, तानि च वाक्यानि च उक्तातिरिक्तवाक्यानि । २० ।

इति जीवेन्द्रियगता नानाभावगता भुवि ।
रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः । २१ ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितो जलभेद सम्पूर्ण ।

अन्वय—इति रूपतः फलतः एव भुवि नानाभावगताः जीवेन्द्रियगताः विष्णोः गुणाः निरूपिताः ।

भावार्थ—या तरहसूं स्वरूप और फलकरकेही पृथ्वीमे अनेक भवनकूं प्राप्तभये तथा जीवनके मनमे रहवेवारे जो श्रीहरिके गुण हे सो हमने कहे ।

कठि० समास—जीवाना इन्द्रियं जीवेन्द्रियं तस्मिन् गता जीवेन्द्रियगता । २१ ।

। इति श्रीजलभेदव्रजभाषा सम्पूर्ण ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

पञ्चपद्यनकी टीका ।

श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसा रतिवर्जिताः ।
अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः । १ ।

अन्वय—श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसाः (अन्यत्र) रतिवर्जिताः लोकवेदे अनिर्वृताः (ये) श्रवणोत्सुकाः ते मुख्याः ।

भावार्थ—भगवद्भजनरूपरससूं जिनको मन विक्षेपवारो रहतो होय, तथा जो श्रीहरिके सिवाय अन्यपदार्थनमे स्नेह-रहित हौंय, और लोक वेदमे सुख न मानते होय और भगवद्गुणसुनवेमे चाहवारे हौंय वे अधिकारी श्रवणमे मुख्य है ।

कठि० समास—श्रीकृष्णस्य रस श्रीकृष्णरस तस्मिन् विक्षिप्तं मनो येषा ते श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसा । १ ।

विक्लिन्नमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविह्वलाः ।
अर्थैकनिष्ठास्ते चाऽपि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः । २ ।

अन्वय—तु विक्लिन्नमनसः (च) भगवत्स्मृतिविह्वलाः श्रवणोत्सुकाः ये अर्थैकनिष्ठाः अपि ते मध्यमाः ।

भावार्थ—और अच्छीतरह सरसहृदय तथा भगवान्के-स्मरणसूं विह्वलरहनवारे और हरिगुणसुनवेमे उत्साह राखनवारे जो अधिकारी मोक्षादिप्रयोजनमे विशेषनिष्ठावारेभी हौंय वे मध्यम कहे हैं ।

कठि० समास—विक्लिन्न मनो येषा ते० । अर्थे एव एका निष्ठा येषा ते अर्थैकनिष्ठा । २ ।

[1]निःसंदिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ।
तत्त्वावेशात्तु विकला निरोधाद्वा न चाऽन्यथा ।३।
पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा ।
अन्यासक्तास्तु ये केचिदधमाः परिकीर्तिताः । ४ ।

अन्वय—ये कृष्णतत्वं निःसंदिग्धे सर्वभावेन विदु तु आवेशात् वा निरोधात् विकलाः च अन्यथा न, तु ये केचित् कदाचित् पूर्णभावेन पूर्णार्थाः तु सर्वदा न, (किंच) अन्यासक्ताः ते अधमाः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—जे अधिकारी सदानन्द श्रीकृष्णके स्वरूपकूं निःसन्देह होयके सब तरहसूं जाने है, और भगवान्के आवेशसूं किवा प्रपंचविस्मृतिपूर्वक श्रीहरिमे आसक्ति होयवेसूं विह्वल हैं किन्तु औरतरहसूं विह्वल नहीं, तथा कोई एक परिमित बखतही भगवद्भावसूं कृतार्थ रहें, सर्वदा वैसें न रहे, और अन्य गृहादिकमें आसक्तिवारे होंय वे अधिकारी तीसरी कक्षाके है ।

कठि० समास०—पूर्णश्चासौ भावश्च० । पूर्णा अर्था येषा ते० । अन्येपु आसक्ता । ३–४ ।

अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु ।
देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्मप्रकारतः । ५ ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितानि पञ्चपद्यानि सम्पूर्णानि ।

---

१ यह एक श्लोक कदाचित् प्रथमश्लोकके सग होय, अर्थानुसधानसूं ऐसो सदेह होय है ।

अन्वय—(ये) मर्त्याः देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्मप्रकारतः श्रवणादिषु अनन्यमनसः ते उत्तमाः ।

भावार्थ—जे अधिकारिपुरुष श्रवणादिभक्तिमे देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र तथा कर्म इनके प्रकारसूं विचलितहृदय न होंय वे उत्तम अधिकारी है, अर्थात् जो देशकालादिके मोहमे पडके भगवद्गुणश्रवणादिको परित्याग न करै वह उत्तमाधिकारी ।

कठिनांशको समास—देशश्च कालश्च द्रव्यं च कर्ता च मन्त्रश्च कर्म च एतेषा इतरेतरद्वंद्व देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्माणि, तेषा प्रकार देशकालद्रव्य-कर्तृमंत्रकर्मप्रकार, तस्मात्० । ५ ।

। इति श्रीपंचपद्यव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

संन्यासनिर्णयकी टीका ।

पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागो विचार्यते ।
स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः । १ ।
कर्ममार्गे न कर्तव्यः सुतरां कलिकालतः ।
अत आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वाद्विचारणा । २ ।

अन्वय—पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागः विचार्यते, सः विशेषतः भक्तौ (च) ज्ञाने (इति) मार्गद्वितये प्रोक्तः, कर्ममार्गे कलिकालतः सुतरां न कर्तव्यः, अतः भक्तिमार्गे आदौ कर्तव्यत्वात् विचारणा (क्रियते) ।

भावार्थ—पश्चात्तापके दूरहोयवेके लिये संन्यासको विचार करे है, वह परित्याग (संन्यास) बहोत करकें भक्ति और ज्ञान इन दो मार्गनमें अपेक्षित होयवेसूं कह्यो है, कर्ममार्गमें तो अभी कलिकाल होयवेसूं कभी न करनो चहिये, तासूं भक्ति-मार्गमे प्रथम करनो चहिये अतएव त्यागको विचार करे हैं १–२

श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्तव्यश्चेत्स नेष्यते ।
सहायसंगसाध्यत्वात्साधनानां च रक्षणात् । ३ ।
अभिमानान्नियोगाच्च तद्धर्मैश्च विरोधतः ।

अन्वय—श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं सः कर्तव्यः (इति) चेत्, न इष्यते, (कुतः) सहायसंगसाध्यत्वात् च साधनानां रक्षणात् च अभिमानात् (एवं) तद्धर्मैः विरोधतः (स न कर्तव्यः) ।

भावार्थ—श्रवणादिभक्ति अच्छीतरह हो सके, याके, लिये परित्याग करनो जो ऐसे कहते हो तौभी ठीक नहीं, कारणके श्रवणादिककू अपनेसमान सहायद्वारा सिद्ध होयवेकी योग्यता है, तथा साधननकी रक्षा करनो चहिये, (सोभी संन्यासमे बने नहीं) तथा अभिमान होयवेसूं, ऐसेही संन्यासधर्मनसूं भक्तिको विरोध है तासूं भक्तिके अर्थ तो त्याग नही करनो चहिये।

क० **समास**—श्रवणादे प्रसिद्धि, तस्यै। सहायाना सग सहायसग, तेन साध्यत्वं सहायसगसाध्यत्वम्। तस्मात्०। ३।

गृहादेर्बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि। ४।
अग्रेऽपि तादृशैरेव संगो भवति नान्यथा।
स्वयं च विषयाक्रान्तः पाषंडी स्यात्तु कालतः। ५।
विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः।
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः। ६।

अन्वय—गृहादेः बाधकत्वेन यदि साधनार्थं (सः) (तर्हि) तथा (न कर्तव्यः) (यतः) अग्रे अपि तादृशैः एव संगो भवति अन्यथा न, तु कालतः विषयाक्रान्तः स्वयं च पाषंडी स्यात् (किंच) विषयाक्रान्तदेहानां हरेः आवेशः सर्वथा न, अतः अत्र भक्तौ साधने त्यागः सुखावहः न एव।

भावार्थ—गृहादिक भगवदासक्तिके साधनमे बाधक हैं यों मानके जो साधनसंपत्तिके लियेही त्याग करो तो भी ठीक नहीं, क्योंके संन्यासलिये पीछे भी हरिस्नेहरहितनको संग होयवेकी विशेष संभावना है, भक्तसंग होयवेकी नहीं, और

कलिकालके बलसूं धीरे धीरे विषयनमें फसतो आपभी पाषंडी होय जाय, और विषयमे फसे हैं देहेन्द्रियादिक जिनके ऐसे पुरुषनमे श्रीहरिको प्रवेश सर्वथा नहीं होय है, तासूं या समयमे भक्तिमार्गमे साधनसंपत्तिके लिये संन्यास लेनो सुखदेवेवारो नहीं है, यह निश्चय है ।

विरहानुभवार्थं तु परित्यागः सुखावहः ।
स्वीयबंधनिवृत्त्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा । ७ ।

अन्वय—विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते, च सः वेषः (अपि) अत्र स्वीयबंधनिवृत्त्यर्थं अन्यथा न ।

भावार्थ—श्रीहरिके विरहको अनुभव होयवेके लिये गृहादिको परित्याग करनो यह तो उत्तम है, और या भक्तिमार्गकी रीतिके संन्यासमें त्रिदंड कोपीनकमंडलुआदि वेषभी, अपने कहाते स्त्रीपुत्रादिकनने किये बंधकूं दूर करवेकेलिये समझनो, और तरहसूं नहीं ।

क० समा०—स्वीयै बंध स्वीयबंध, तस्य निवृत्ति, तस्यै स्वीयबंधनिवृत्त्यर्थम् । ७ ।

कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत् ।
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते । ८ ।

अन्वय—कौडिन्यः (च) गोपिकाः गुरवः प्रोक्ताः च साधनं तत् (तदाचरितमेवेत्यर्थः) (किं तत्) भावनया सिद्धः भावः, अन्यत् साधनं न इष्यते ।

भावार्थ—मार्यादिकभक्त श्रीकौडिन्यऋषि और पुष्टिभक्त

१–आजकाल ऐसे सन्यासकी दुरवस्था प्रत्यक्ष है ।

श्रीव्रजभक्त[1] ये दोनो या त्यागसबंधी भावमे उपदेष्टा गुरु हैं, और उनने कियो सोही साधन है, (यहां उनने किये साधन बहोत हैं उनमे कोनसो ग्रहण करनो, यह शंका होय है ताको उत्तर श्रीआचार्यजी लिखे है के) निरंतर विरह भावनासूं सिद्धभई प्रीतिही साधन है, और साधनकी अपेक्षा नहीं है । ८ ।

विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं नहि ।
ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य बाधकाः । ९ ।

अन्वय—विकलत्वं तथा अस्वास्थ्यं (विरहस्य) प्रकृतिः, (तत्) प्राकृतं न हि, ज्ञानं च गुणाः एवं वर्तमानस्य तस्य बाधकाः ।

भावार्थ—विरहसूं उन्मत्तपनो तथा अपनी प्रकृतिमे न

१–कितनेक भाषाटीकाकार या जगह त्यागके विषयमे कौडिन्य तथा श्रीव्रजभक्तनको मर्यादा तथा पुष्टि यह दो भेद लिखकें निर्देश करें हैं, तथापि यह बात मूलसू तथा श्रीगोकुलनाथजीकी टीकासूं नहि निकसे है, मूलमे तो 'च, वा' आदि न देयवेसूं स्पष्टही त्यागविषयमे अभेद है और श्रीगोकुलनाथजी यो लिखे है के 'तासूं कौडिन्यऋषिके किये त्यागको तथा पुष्टिमार्गीयत्यागको कितनोक भावसाम्य है तासू कौडिन्यऋषिभी गुरू गिने हैं' या कहवेसूं यह स्पष्ट मालुम पडे है के भक्तपनेमे वह भेद रहतेभी यहा त्यागविषयमे तो ऐक्यही इष्ट है । तथा **गोपिकानामप्युपदेष्टृत्वाभावेऽपि** या कहवेसूं श्रीव्रजभक्तनकूंभी भावमात्रमे गुरुत्व है न कि दीक्षा गुरुत्वभी, और 'दिष्ट्या' आदि दशमके श्लोकमे भी भावमात्रको उनसूं प्रवर्तन बतायो है, और यह बात है भी युक्त क्योके 'मनोगति' 'मानसी सा' 'सा परानुरक्ति' इत्यादिवचननसूं तथा इनकी टीकानसूं भावमात्रकूं सेवा वा परभक्तिपनो निकसेहै और वाहीके गुरु श्रीव्रजभक्त होय सके हैं तासूं जो अविद्वत्पक्षवारे इन वचननके भरोसे श्रीव्रजभक्तनकूं दीक्षागुरुत्वभी लानो चाहेहैं वे सर्वथा भ्रान्त हैं । और या मार्गके गूढ शत्रु हैं यह स्पष्ट है । अनुवादकर्ता ।

रहनो ये दोनो विरहकी अवस्था है, स्वस्थप्रकृतिकी दशा नही हैं यह निश्चय है, 'सर्व ब्रह्म है' इत्यादिज्ञान तथा गुण ये ऐसी अवस्थामे वर्तमान भक्तके भावके बाधक है । ९ ।

सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात्संन्यासेन विशेषितात् ।
भावना साधनं यत्र फलं चाऽपि तथा भवेत् ।१०।

अन्वय—संन्यासेन विशेषितात् ज्ञानात् सत्यलोके स्थितिः (भवति) च यत्र (यादृशी) भावना साधनं (तत्र) फलं अपि तथा भवेत् ।

भावार्थ—संन्याससूं उत्तमताकूं प्राप्तभये ज्ञानसूं सत्यलोककी गति मिलै है, कारणके जा मार्गमे जैसी भावना साधन होय वासूं फलभी वैसोही मिलै है । १० ।

तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठंत्येव न संशयः ।
बहिश्चेत्प्रकटः स्वात्मा वह्निवत्प्रविशेद्यदि । ११ ।
तदैव सकलो बंधो नाशमेति न चान्यथा ।

अन्वय—तादृशाः सत्यलोकादौ एव तिष्ठंति न संशयः, (भक्तौ तु) चेत् बहिः प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् यदि (पुनः) प्रविशेत्, तदा एव सकलः बंधः नाशं एति च अन्यथा न ।

भावार्थ—संन्यासग्रहणपूर्वक ज्ञानी लोक ब्रह्मलोक आदिमे ही स्थित रहे है, परन्तु भक्तिमार्गमें तो जो बहार प्रगट भयो स्वात्मा भगवान् अग्नि जैसे काष्ठमे पुनः प्रवेश करै तैसे जब भक्तनके अंतः प्रवेश करै तबही वाके सकल बंधननको नाश होय है, और तरहसूं बंधनाश संभव नहीं है । ११ ।

गुणास्तु संगराहित्याज्जीवनार्थं भवन्ति हि । १२ ।

अन्वय—गुणाः तु संगराहित्यात् जीवनार्थं भवन्ति हि ।

भावार्थ—श्रवण कीर्तन आदिमें सदा आते प्रभुके गुण तो, भक्तनके जीवनके लिये हैं, क्योंके प्रभुको संग जहांतक न होय तहांतक भक्तलोग उन श्रीहरिके गुननकरकें हीं अपनो जीवन राखसकें हैं । १२ ।

भगवान्फलरूपत्वान्नाऽत्र बाधक इष्यते ।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं दयालुर्न विरुद्ध्यते ।१३।

अन्वय—फलरूपत्वात् भगवान् अत्र बाधकः न इष्यते, (भगवता) स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं (यतः) दयालुः न विरुद्ध्यते ।

भावार्थ—भक्तिमार्गमें भगवान् फलरूप है, भाव साधन है वा भावके उत्कट होयवेके लिये विरहकी अपेक्षा है, और विरहानुभवके लियेही आचार्यनने त्यागको उपदेश कियो है, तो एसी विरहावस्थाके पूर्वही श्रीहरि अपनो स्वरूपदान करदें तो वे बाधक कहावें तासूं कहें है के, श्रीहरि फलरूप हैं तासूं बाधक नहीं होंय हैं, और ऐसे वचनभी नहीं कहें हैं जासूं स्वस्थता होय जाय, क्योंके कृपापे वश हैं तासूं वा भावको विरोध नही करें हैं ।

कठि० समास—स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यं, स्वास्थ्यहेतुः वाक्यं स्वास्थ्यवाक्यम् । १३ ।

दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिद्ध्यति नान्यथा ।

अन्वय—अयं परित्यागः दुर्लभः प्रेम्णा सिद्ध्यति अन्यथा न (सिद्ध्यति) ।

भावार्थ—याप्रकारको यह भक्तिमार्गीय संन्यास दुर्लभ है, और प्रभु प्रेमसूं ही प्राप्त होय है, तप दान आदि साधननसूं दुष्प्राप है।

कठि० समास—दुःखेन लब्धु अशक्य दुर्लभ।

ज्ञानमार्गे तु संन्यासो द्विविधोऽपि विचारितः। १४।
ज्ञानार्थमुत्तराङ्गञ्च सिद्धिर्जन्मशतैः परम्।

अन्वय—ज्ञानमार्गे सन्यासः तु ज्ञानार्थं च उत्तराङ्गं (इति) द्विविधः अपि विचारितः परं जन्मशतैः सिद्धिः (स्यात्)।

भावार्थ—ज्ञानमार्गमे जो सन्यास है सो तो ज्ञान होयवेके लिये तथा ज्ञानभये पीछे ऐसे दोनोही प्रकारको कह्यो है, परन्तु वा दोनो तरहके संन्यास तथा ज्ञानसू सेकडान जन्ममे मोक्ष मिलै है, क्योके गीतामे प्रभुने अपने श्रीमुखसूं ही कही है के 'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते' बहोत जन्मनके अनंतर ज्ञानवान् मोकूं प्राप्त होंय है।

कठि० समास—द्वे विधे यस्य स द्विविध। उत्तर च तत् अग च उत्तराङ्गम्। जन्मना शतानि जन्मशतानि, तै। १४।

ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम्। १५।
अतः कलौ स संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा।
पाषंडित्वं भवेच्चापि तस्माज्ज्ञाने न संन्यसेत्। १६।
सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वादिति स्थितम्।

अन्वय—यज्ञादिश्रवणात् ज्ञानं च साधनापेक्षं मतं, अतः कलौ सः संन्यासः पश्चात् तापाय (भवति) अन्यथा (च) न, च पाषंडित्वं अपि भवेत्, तस्मात् कलिदोषाणां सुतरां प्रबलत्वात् ज्ञाने न संन्यसेत् इति स्थितम्।

भावार्थ—वेदमे चित्तशुद्धि आदिके लिये निष्कामयज्ञादि करवेकी आज्ञा है तासूं ज्ञानभी अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारभी साधनकी अपेक्षा राखे है ऐसो मान्यो है, और वे साधन कलियुगमे बनने मुश्किल है तासूं वह विविदिषा दशाको सन्यास पश्चात्तापमात्र फलके लिये है, और विद्वत्संन्यासभी ताहीसूं नहीं सिद्ध होय सके है, तथा जो सहसा संन्यास ले तो थोडे दिनमे समयवशसूं पाषंडी होयके नष्ट होय जाय है, तासूं यासमयमे कलिकालके अनेक दोष अत्यंत प्रबल है यह समझके ज्ञानमार्गमें संन्यास लेनो नही, और याहीसूं शास्त्रनमे निषेधभी कियो है। १५–१६।

भक्तिमार्गेऽपि चेद्दोषस्तदा किं कार्यमुच्यते ।१७।
अत्रारम्भे न नाशः स्याद्दृष्टान्तस्याप्यभावतः ।
स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद्बाधः केनाऽस्य संभवेत् १८

अन्वय—भक्तिमार्गे अपि दोषः तदा कि कार्यं इति चेत् (तर्हि) उच्यते, आरंभे दृष्टान्तस्य अपि अभावतः अत्र नाशः न स्यात्, स्वास्थ्यहेतोः परित्यागात् अस्य बाधः केन संभवेत्।

भावार्थ—भक्तिमार्गमेभी कलियुगके दोष बाध करै तो कहा करनो ऐसे जो मनमे विचार होय तो वाके लिये कहै हे के कोई ऐसो दृष्टान्त नहीं मिलै है तासूं या भक्तिमार्गीय संन्यासके आरंभमें नाश होयवेकी संभावना नहीं है, अपने स्वरूपमे स्थितरहवेके कारणवारे या भक्तिमार्गीय संन्यासकूं प्राप्त होयकें भक्तको वा स्थितिसूं गिरनो कैसें होय सकै है, अर्थात्

अनुग्रह प्राप्त प्रेमरूपा भक्तिही इतनी समर्थ है के वाके आरंभमें किये परित्यागमे कालादिक कोईभी प्रतिबंध नही करसकें है ।

कठि० समास—स्वस्मिंस्तिष्ठतीति स्वस्थ, स्वस्थस्य भाव स्वास्थ्यं, तस्य हेतु, तस्मात्० । परित्याग प्राप्य इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । १७–१८ ।

हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ।
अन्यथा मातरो बालान्न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित् । १९।
'ज्ञानिनामपि' वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति ।
आत्मप्रदः प्रियश्चाऽपि किमर्थं मोहयिष्यति । २० ।

अन्वय—अत्र हरिः (अपि) बाधा कर्तुं न शक्नोति, अपरे कुतः, अन्यथा मातरः बालान् स्तन्यैः क्वचित् अपि न पुपुषुः ज्ञानिना अपि (इति) वाक्येन भक्तं न मोहयिष्यति आत्मप्रदः च प्रियः अपि (भगवान्) (भक्तं) किमर्थं मोहयिष्यति ।

भावार्थ—या परित्यागमे स्वयं भगवान्‌भी प्रेमवशहोयके जब बाधा नही करसकै हैं तो फिर कालादिककी कहा चलाई, यदि श्रीहरिभी अपने भक्तनकूं बाध करते तो फिर लोकमे माता भी अपने बालकनकूं दुधसूं कभीभी पालन नही करती, अर्थात् जैसे लोकमे माता अपने बालकनको पालन अपने दुधसूं करै है, किन्तु कभीभी उनकूं दुःख नहीं देसके है तैसेही श्रीहरिभी अपने भक्तनके परित्याग करवेमे बाध नहीं करसके है, (याही अर्थकूं स्पष्ट करे है) के मार्कंडेयपुराणके '**ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥**' समर्थ ऐसी भगवच्छक्तिरूपा महामाया देवी जो है सो ज्ञानीनके मनकूंभी जबरदस्ती खेचके मोहमें पटक दे है,

या वचनसूं मालुम पडै है के श्रीहरि केवलज्ञानीनकूं तो मोह करवायदें है, परन्तु अपने भक्तकूं मोह नही करावेगे, भगवान् सबकूं अपनो स्वरूप देवेवारे है तथा प्रिय है, तासूं अपने भक्त-नकूं कायके लिये मोह करामेगे, अथवा 'यह मेरो भक्त आत्मा-सहित सर्व अर्पण करवेवारो है तथा मोकूं अत्यंत प्रिय है,' यों जानके क्यों मोह करामेगे । १९—२० ।

तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम् ।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थादिति मे निश्चिता मतिः २१
इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनिश्चितम् ।
संन्यासावरणं भक्तावन्यथा पतितो भवेत् । २२ ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचित सन्यासनिर्णय समाप्त ।

अन्वय—तस्मात् उक्त प्रकारेण परित्यागः विधीयतां, अन्यथा स्वार्थात् भ्रश्यते इति मे निश्चिता मतिः, इति वल्लभेन कृष्णप्रसादेन भक्तौ संन्यासावरणं विनिश्चितं, अन्यथा पतितः भवेत् ।

भावार्थ—कलियुगमे अन्यमार्गीय परित्याग दोषयुक्त है तासूं हमारे कहे अथवा 'तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य०' इत्यादिश्लोकन-करके एकादशमे प्रभुने उद्धवजीसूं कहे प्रकार करके परित्याग करनो, और तरहसूं करे तो भगवदनुग्रहरूप अपने स्वार्थसूं नीचो गिरे है, यह मेरी निश्चित बुद्धि है, या रीतिसों श्रीवल्ल-भाचार्यने श्रीहरिकृपाकरके भक्तिमार्गमे संन्यासको उत्तम अंगी-कार निश्चय कियो, यासूं और तरह जो संन्यासको स्वीकार करै तो कालादिके वश होय है । २१—२२ ।

। इति सन्यासनिर्णयव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें.

निरोधलक्षणकी टीका ।

यच्च दुःखं यशोदाया नंदादीनां च गोकुले ।
गोपिकानां तु यद्दुःखं तद्दुःखं स्यान्मम क्वचित् ।१।

अन्वय—गोकुले यशोदायाः च नन्दादीना च यत् दुःखं (आसीत्) तु गोपिकानां यत् दुःखं, तत् दुःखं कचित् मम स्यात् ।

भावार्थ—श्रीगोकुलमे श्रीव्रजरानी तथा श्रीनंदरायकूं आदिलेके गोपनकूं तथा औरभी श्रीहरिके संबंधवारेनकूं जा तरहकी विरहवेदना भयी, तथा श्रीगोपीजननकू जा तरहकी विरहवेदना भयी वैसो विरह कभी मोकूभी होयगो, अथवा वैसो विरह दुःख मेरे भी देहेन्द्रियादिमे होयगो ? । १ ।

गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।
यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान्किं विधास्यति । २ ।

अन्वय—गोकुले गोपिकानां च सर्वेषा व्रजवासिना यत् सुखं समभूत् तत् सुखं कि भगवान् मे विधास्यति ? ।

भावार्थ—श्रीकुलमे श्रीगोपीजननकूं, गोपनकूं तथा अन्य व्रजमे रहवेवारे पशुपक्षीनकूं श्रीहरिकी वाललीलादिकनसूं जैसो सुख भयो वैसो सुख प्रभु मोकूं भी देगे कहा ? । २ ।

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा ।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् । ३ ।

अन्वय—वृन्दावने वा गोकुले, उद्धवागमने (सति) यथा सुमहान् उत्सवः जातः तथा मे मनसि कचित् (स्यात्)।

भावार्थ—श्रीवृन्दावनमे तथा श्रीगोकुलमे जब श्रीउद्धवजी आये वासमयमे श्रीगोपीजननकूं तथा श्रीयशोदादिनकूं जो आनंद भयो वैसो आनंद मेरे मनमेभी कभी होयगो ? । ३ ।

महतां कृपया यावद्भगवान् दययिष्यति ।
तावदानंदसंदोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि । ४ ।

अन्वय—महता कृपया भगवान् यावत् दययिष्यति, तावत् कीर्त्यमानः आनंदसंदोहः सुखाय हि ।

भावार्थ—श्रीव्रजभक्तनके अनुग्रहसूं श्रीहरि जबतक फल-देयवेकी दया करै, तबतक अर्थात् साधन दशामेभी नित्यकीर्तनमे आते आनदरूप जो प्रभुके गुणानुवाद है सोभी आनंद देवेवारे होंय है यह निश्चय है । ४ ।

महतां कृपया यद्वत्कीर्तनं सुखदं सदा ।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् । ५ ।

अन्वय—महता कृपया (भक्तकृत) कीर्तनं यद्वत् सदा सुखदं (अस्ति) तद्वत् लौकिकाना (कीर्तनं) तु स्निग्धभोजनरू-क्षवत् तथा न (भवति)।

भावार्थ—बडेनके अनुग्रहसूं प्राप्तभयो जो हरिगुणनको की-र्तन, सो जैसे सदा सुखदेवेवारो है, तैसै लोकसूं संबध राखवेवारे पुरुषनने कियो कीर्तन, सुख नही देय है, वामे दृष्टान्त दें है के जैसे स्निग्धभोजनकरवेवारेकूं रूखो भोजन अच्छो न लगै तैसैं ।

कठि० समास—स्निग्ध भोजनं यस्य स· स्निग्धभोजनः, तस्मै रूक्षं स्निग्धभोजनरूक्ष, तेन तुल्य स्निग्धभोजनरूक्षवत् । ५ ।

गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविंदस्य प्रजायते ।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः । ६ ।

अन्वय—शुकादीना यथा गोविन्दस्य गुणगाने सुखावाप्तिः प्रजायते, तथा आत्मनि न एव अन्यतः कुतः ।

भावार्थ—श्रीशुकदेवजीकू आदिलेके जितने मुक्तभक्त है उन्हें जैसी सुखकी प्राप्ति श्रीहरिके गुणगायवेमे होय है, तैसी सुखप्राप्ति स्वरूपज्ञानमे अर्थात् मोक्षमेभी नही होय है और तरह तो कैसे होय । ६ ।

क्लिश्यमानाञ्जनान्दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः । ७ ।

अन्वय—क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा यदा कृपायुक्तः भवेत् तदा हृदिस्थं सर्वं सदानंदं बहिः निर्गतं (स्यात्) ।

भावार्थ—गुणगान करते करते अपने भक्तनकू अपनी प्राप्तिके लिये अत्यत क्लेशपाते देखके श्रीकृष्ण जब कृपायुक्त होंय है, तब हृदयमें सदा विराजते सदानंदस्वरूप श्रीनंदनंदन परब्रह्म बाहर प्रकट होंय है । ७ ।

सर्वानन्दमयस्याऽपि कृपानंदः सुदुर्लभः ।
हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् । ८ ।

अन्वय—सर्वानंदमयस्य अपि कृपानंदः सुदुर्लभः, हृद्गतः (सः) स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः (सन्) जनान् प्लावयते ।

भावार्थ—सर्वप्रकारसूं आनंदस्वरूप ऐसे श्रीप्रभुकोभी कृपा-रूप आनंद अत्यंत दुर्लभ है, हृदयमें प्राप्तभयो वह भगवत्कृपानंद

जब अपने गुणानुवादनकूं सुनके पूर्ण होय है तब अपने भक्त-नकूं वा प्रेमानंदमे मग्न करदे है, यहां धर्म और धर्मीको ऐक्य होयवेसूं कृपाकूं भी आनंदरूप कही है एसे समझनो । ८ ।

तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः ।
सदानंदपरैर्गेयाः सच्चिदानंदता ततः । ९ ।

अन्वय—तस्मात् सदानदपरैः (अतएव) निरुद्धैः (भागवतैः) सर्व परित्यज्य सर्वदा गुणाः गेयाः ततः सच्चिदानदता (भवेत्) ।

भावार्थ—भक्तिमार्ग सर्वोत्तम है तासूं सदानंद श्रीहरिको आश्रय लेवेवारे और याहीसूं प्रभुने अपनेमे जिनको निरोध करलीनो है ऐसे भगवदीयनकूं सर्व लौकिक वैदिक साधननकूं छोडके सदा श्रीभगवानके गुणनको गान करनो चहिये, ऐसी-रीतिसूं गुणगान करवेसूं जीवकूं सच्चिदानंदपनो प्राप्त होय है ।

क० समा०—सत् च चित् च आनंदश्च एतेषा समाहार, सच्चिदानन्द, सच्चिदानंदस्य भाव तत्ता । ९ ।

अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः ।
निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते । १० ।

अन्वय—रोधेन निरुद्धः तु निरोधपदवी गतः अहं (लौकिके) निरुद्धाना रोधाय ते निरोधं वर्णयामि ।

भावार्थ—अपने भक्तनकूं अपने प्रेममे लगायवेके आग्रहसूं श्रीहरिने स्वयं, मेरे मनकू औरपदार्थनकूं भुलायके अपने चर-णारविन्दमे लगाय राख्यो है, और ताहीसुं निरोधरूप फलकूं प्राप्त भयो मे, जो लौकिकमे आसक्त होय रहे है उन अधिका-

रीनके प्रति निरोधको वर्णन करूं हूं, स्त्रीपुत्रादिप्रपञ्चकूं भूलके प्रभुमे आसक्ति होयवेकूं, निरोध कहे है । १० ।

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।
ये निरुद्धास्त एवाऽत्र मोदमायान्त्यहर्निशम् । ११ ।

अन्वय—ये हरिणा विनिर्मुक्ताः ते भवसागरे मग्नाः, (किंच) ये निरुद्धा ते एव अत्र अहर्निशं मोदं आयान्ति ।

भावार्थ—'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः' इत्यादिभगवद्वचननसूं मालुम पडै के जिनजीवनकी श्रीहरिने नेक उपेक्षा करदीनी है, वे या अहंताममतारूप संसारसागरमे डूब जाँय हे, अर्थात् जन्ममरणादिके प्रवाहमे ही पडेरहे है, और जिन्हे श्रीहरिने अपने जानके रोके है अर्थात् अपनाये है वे जीव रात्रिदिन या गुणगानादिभक्तिमे आनंदकूं प्राप्त होय है ।

क० स०—भव एव सागर भवसागर तस्मिन्० । अहश्च निशा च अहर्निशम् । ११ ।

संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै ।
कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् । १२ ।

अन्वय—संसारावेशदुष्टाना इन्द्रियाणां हिताय सर्ववस्तूनि ईशस्य भूम्नः कृष्णस्य वै योजयेत् ।

भावार्थ—अहंता ममतारूप संसारको सबतरहसुं प्रवेश होयवे करके दोषवारी भई ऐसी इन **'रसना'** आदि इन्द्रियनके हितके लिये अर्थात् भगवत्संबंध होयवेसूं शुद्ध होयवेके लिये इन्द्रियनको जिनसूं संबंध रहतो होय उन सर्व वस्तूनकूं सर्वनि-

यन्ता तथा सर्वत्र व्यापक श्रीहरिमे लगावै, तथा इन्द्रियादि-स्वीयवस्तूनको भी श्रीहरिमे विनियोग करै।

क० स०—सम्यक् सरण ससार, दृढ स्वरूपात् च्यवनमित्यर्थः। ससारस्य आवेश ससारावेश, ससारावेशेन दुष्टानि ससारावेशदुष्टानि, तेषाम्०। १२।

गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः।
संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत्सुखम्। १३।

अन्वय—मुरवैरिणः गुणेषु सर्वदा आविष्टचित्ताना संसार-विरहक्लेशौ न स्यातां, हरिवत् सुखं (स्यात्)।

भावार्थ—मुरनामा दानवके मारनवारे श्रीहरिके गुणानुवादमे जिनको चित्त सदा लगो रहे है उन भक्तनकू संसार तथा प्रभुको विरह अथवा अपनी प्रियवस्तूको विरह नही होय है किन्तु श्रीहरिकी तरह वे भी सर्वदा आनंदमे मग्न रहे है।

क० समा०—आविष्ट चित्त येषा ते आविष्टचित्ता, तेषाम्। संसारश्च विरहक्लेशश्च संसारविरहक्लेशौ। १३।

तदा भवेद्दयालुत्वमन्यथा क्रूरता मता।
बाधशंकाऽपि नास्त्यत्र तदध्यासोपि सिद्ध्यति।१४।

अन्वय—तदा दयालुत्वं भवेत् अन्यथा क्रूरता मता, अत्र बाधशंका अपि न अस्ति, (यतः) तदध्यासःअपि सिद्ध्यति।

भावार्थ—जब या तरहसूं ससार और विरहक्लेश आदिकी निवृत्ति हो जाय, तब श्रीहरिमे दयालुपनो सिद्ध होय है और यदि ऐसे न होय तो अनुग्रह नही है ऐसे जाननो, श्रीहरिके गुणगानादि करवेमे कोई तरहकी कालकर्मादिद्वारा हानि भी

नहीं होय है क्योंके भक्तकूं देहमेसूं अहंभाव छूटके 'श्रीहरि मेरे हैं मे श्रीहरिकोहूं' यह भाव होय जाय है। १४।

भगवद्धर्मसामर्थ्याद्विरागो विषये स्थिरः।
गुणैर्हरेः सुखस्पर्शान्न दुःखं भाति कर्हिचित्। १५।

अन्वय—भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विषये स्थिरः विरागः (भवति) गुणैः हरेः सुखस्पर्शात्। कर्हिचित् दुःखं न भाति।

भावार्थ—प्रतिदिन गानकरवेमे आते श्रीहरिके जो ऐश्वर्यादि छ मुख्यधर्म उनके सामर्थ्यसूंही भक्तकूं विषयनमे दृढ-वैराग्य होय जाय है, और गुणानुवादनके प्रभाव करके हृदयमें प्राप्तभये श्रीहरिके आनंददायक स्पर्श होयवेसूं कभी कोई तरहके दुःखको भान नहीं होय है।

क० **समास**—समर्थस्य भाव सामर्थ्यं, भगवत धर्मा (ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य,) भगवद्धर्मा, तेषा सामर्थ्य भगवद्धर्म-सामर्थ्य, तस्मात्०। १५।

एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गादुत्कर्षं गुणवर्णने।
अमत्सरैरलुब्धैश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः। १६।

अन्वय—एवं ज्ञानमार्गात् गुणवर्णने उत्कर्षं ज्ञात्वा, अमत्सरैः च अलुब्धैः सदा (हरेः) गुणाः वर्णनीयाः।

भावार्थ—या रीतिसूं श्रीहरिके गुणवर्णनमें ज्ञानमार्गसूं अधिकता जानके ईर्ष्या और लोभसूं रहित भक्तनकूं निरंतर श्रीहरिके गुणानुवादही करने चाहिये।

क० **समास**—ज्ञानमेव मार्ग, तस्मात्०। नास्ति मत्सरो येषु ते अमत्सरा॰, तै। १६।

हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र हि।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा। १७।
श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः।
पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत्। १८।

अन्वय—हरिमूर्तिः सदा ध्येया हि सकल्पात् (प्रकाशितायां) तत्र (मूर्तौ) सदा दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं, तथा कृतिगती श्रवणं कीर्तनं अपि (भवति) स्पष्टं कृष्णप्रिये पुत्रे रतिः, पायोः मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत्।

भावार्थ—श्रीहरिके स्वरूपको ध्यान सदां करते रहनो क्योंके भावमात्रसू हृदयमे प्रगट भये वा भगवत्स्वरूपमे देखनो, स्पर्शकरनो, स्पष्ट होय है, तथा करनो चलनो श्रवण करनो कीर्तनकरनो, येभी स्पष्ट होय है, श्रीहरिकेप्रिय पुत्रादिमे प्रीतिकरनो, पायुके मलांशकूं छोडके अन्नादिके बाकी रहे भागकूं शरीरमे प्राप्त करनो। १७-१८।

यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः। १९।

अन्वय—यस्य वा यदा भगवत्कार्यं स्पष्टं न दृश्यते, तदा तस्य विनिग्रहः कर्तव्यः इति निश्चयः।

भावार्थ—जिन पुत्रादिकनमे अथवा इन्द्रियादिकनमे जब स्पष्टरीतिसूं भगवत्संबंधी सेवा आदि कोईभी कार्य न दीखते होंय, तो तब उनउनको अच्छीतरह निग्रह करनो यह निश्चय है। अर्थात्–श्रीहरिके सन्मुखनसूं प्रीतिकरनी, उदासीननकुं

नियममे करने और प्रतिकूलनको परित्याग करनो यह क्रम है । १९ ।

पूर्वोक्तबात सदा स्मरण राखनी ताके लिये वाकी सर्वोच्चता बतावे है

नातः परतरो मंत्रो नातः परतरः स्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम् । २० ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचित निरोधलक्षण सम्पूर्णम् ।

अन्वय—अतः परतरः मंत्रः न (अस्ति) अतः परतरः स्तवः न, अतः परतरा विद्या न अतः परात्परं तीर्थं न ।

अन्वय—निरोधके विषयमे यासूं ऊंचो कोई मंत्र नहीं है, और यासू श्रेष्ठ कोई स्तुतिभी नही है तथा यासूं उत्तम कोई विद्याभी नही है ऐसेही यासूं परे कोई तीर्थभी नही है । २० ।

। इति श्रीनिरोधलक्षणव्रजभाषा सम्पूर्ण भई ।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रजभाषामें

सेवाफलकी टीका ।

याद्दशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते ।
अलौकिकस्य दाने हि चाद्यः सिद्ध्येन्मनोरथः । १ ।
फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोऽत्र नियामकः ।

भावार्थ—याद्दशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलं उच्यते, हि, अलौकिकस्य दाने च आद्यः मनोरथः सिद्ध्येत्, वा फलं (सिद्धेत्) वा अधिकारः, अत्र कालः नियामकः न ।

भावार्थ—सिद्धान्तमुक्तावलीग्रंथमे जा तरहकी सेवा (मानसी) कह आये है ताकी सिद्धि होयवेसूं जो फल होय है सो कहे है प्रभु अनुग्रह करकें जो अलौकिक सामर्थ्यको दान करे अर्थात् अपने साथ कामाशनादि क्रीडा आदिको दान करे तो प्रथम मनोरथ (फल) सिद्ध होय है, और जो सहयोग अर्थात् ब्रजवासीनकी तरह संग रहवे मात्रको दान करे तो मध्यम फलकी सिद्धी होय है, और जो सेवोपयोगी देहरूप अधिकारको दान करे तो तृतीयफलकी सिद्धि होय है, फलदेयवेमें काल नियामक नहीं है, कोनसो फल कोनकू देनो याको नियामक भगवदनुग्रह है।

कठि० समास—तस्या सिद्धि तत्सिद्धि, तस्याम्० । १ ।

उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः । २ ।

अकर्तव्यं भगवतः सर्वथा चेद्गतिर्न हि ।
यथा वा तत्त्वनिर्धारो विवेकः साधनं मतम् । ३ ।

अन्वय—किं तु उद्वेगः वा प्रतिबंधः वा भोगः बाधकः स्यात्, चेत् भगवतः, सर्वथा अकर्तव्यं (तर्हि) हि गतिः न, वा यथा तत्वनिर्धारः (तथा) विवेकः साधनं मतम् ।

भावार्थ—किन्तु कोईतरहकीभी मनकी घबराट, विघ्न, और भोग, ये तीनो फलमे बाधक है, श्रीहरिकूं यदि सर्वथा फलदेयवेको न होय तो फिर कोईतरहको उपाय नही है, फिरतो अपनेमे आसुरपनेको जैसो निश्चय होय जाय ताके अनुसारही ज्ञान तथा ज्ञानके साधनको आचरण करनो यह शास्त्रसंमत है और वाको ज्ञानही साधन है, अर्थात् वो अधिकारी ज्ञानमार्गमें रहै । २-३ ।

बाधकानां परित्यागो भोगेप्येकं तथा परम् ।
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा । ४ ।

अन्वय—बाधकाना परित्यागः (कर्तव्यः) भोगे अपि एकं (लौकिकं भोगं) तथा परं निष्प्रत्यूहं, (यतः) महान् भोगः प्रथमे विशते, (किंच) महान् (प्रतिबंधः) सदा ।

भावार्थ—उद्वेग, प्रतिबंध, और भोग, इन तीनो बाधकनके कारणनको सब तरहसूं त्यागकरनो, पर भोगमें लौकिकभोगको परित्याग करनो, तेसे हीं प्रतिबंधमे भी साधारण प्रतिबंधको त्यागकरनो, क्योंके अलौकिकभोग और भगवत्कृत प्रतिबंध ये दोनो त्यागकरवेकूं अशक्य है, ताको हेतु बतावे है के अलौकिकभोग अर्थात् अलौकिकसामर्थ्य, उत्तम फलमे गिन्यो जाय है

ताम् त्यागकरवे लायक नही है और भगवत्कृत प्रतिबंध भी मना रहे है तासूं त्यागकरवेकूं अशक्य है, अर्थात् एक भोग फल है तासू, और एक प्रतिबध प्रभुकृत है तासूं, अत्याज्य है।

कठि० समास—निर्गत प्रत्यूहो यस्मात् तत्० । ४ ।

सविघ्नोऽल्पो घातकः स्याद्बलादेतौ सदा मतौ ।
द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात् ।५।

अन्वय—सदा, एतौ (लौकिको भोगः) सविघ्नः अल्पः (च) (साधारण प्रतिबंधः) बलात् घातकः (इति) मतौ, द्वितीये ससारनिश्चयात् सर्वथा चिन्ता त्याज्या ।

भावार्थ—सदा, लौकिक भोग, अधिव्याधि आदि अनेक विघ्ननसूं युक्त है, तथा थोडो है, और साधारण प्रतिबंधभी अपने सामर्थ्यसू हानिकरवेवारो है तासू यह दोनो शास्त्रमे परित्यागकरवे लायक माने है, और प्रभुके करे प्रतिबंधमे तो संसारको निश्चय होयवेसूं सर्वथा चिन्ताको त्याग करै, क्योंके गीतामे प्रभुने '**क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु**' इत्यादि वाक्यनसूं यह निश्चय करदीनो हे के आसुर जीव सदा संसारमेही पड रहे है । ५ ।

नन्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम् ।
अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन्मनोभ्रमः । ६ ।

अन्वय—आद्ये दातृता न अस्ति (इति) ननु, तृतीये गृहं बाधक, इयं अवश्या भाव्या, अन्यत् सर्व मनोभ्रमः ।

भावार्थ—जो पहलो उद्वेगरूप प्रतिबध होय तो समझनो के श्रीप्रभुकूंही फल देववेकी इच्छा नही है, और तीसरो भोगरूप

प्रतिबंध आवै तो गृह आदिकू बंधनकरवेवारे समझने यह निश्चय है, या रीतसू तीनो तरहसूं प्रतिबंध और तीनो तरहके भोग यह जीवके वशमे नही हैं ऐसे विचारनो, यासूं अन्य विचार केवल मनके भ्रम है ।

कठि० समास—न वश्या । अवश्या । मनस भ्रम मनोभ्रम । ६ ।

तदीयैरपि तत्कार्यं पुष्टौ नैव विलंबयेत् ।
गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मतिः । ७ ।
कुसृष्टिरत्र वा काचिदुत्पद्येत स वै भ्रमः ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं सेवाफल सम्पूर्णम् ।

अन्वय—तदीयैः अपि तत् कार्य, पुष्टौ न एव विलंबयेत् गुणक्षोभे अपि एतत् एव द्रष्टव्यं इति मे मतिः वा अत्र काचित् कुसृष्टिः उत्पद्येत सः वै भ्रमः ।

भावार्थ—भगवत्संबंधी पुरुपनकूभी फल और प्रतिबंधनको विचार राखनो चहिये, अनुग्रहकरवेमे श्रीहरि कभी विलंब नहीं करेगे, सत्वादि गुणनकरके जब कोईतरहको विकार उत्पन्न होय तो वा समयमेभी ' प्रभुनेही फलदेयवेमे विलंब विचार्यो है ' ऐसे समझनों यह मेरी वुद्धि है, याउक्तिमे जो कोईकूं सन्देहादि उत्पन्न हौंय तो वो भ्रममात्र है । ७ ।

। इति सेवाफलव्रजभाषा सम्पूर्ण भई ।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

षोडशग्रंथ सम्पूर्ण ।